मूल्य : ₹ 30

अगस्त 2025

आई.एस.ओ. 9001: 2015 संगठन

भाकृअनुप
ICAR

खेती

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

• इस अंक में •

सोयाबीन की बहुगुणी प्रजाति-वीएल सोया 99

वर्षा आधारित कृषि में जलकुंड की उपयोगिता

कृषि उपकरणों से उत्पादकता में सुधार

श्रीअन्न की कृषि में भूमिका

/InAgrisearch | /user/icarindia | officialicarindia | www.icar.org.in | /icarindia

एक साधनहीन ग्रामीण गृहिणी बनी सफल उद्यमी

प्रेरणा और साहस के साथ, व्यक्ति महान ऊंचाइयों को प्राप्त कर सकता है। श्रीमती श्यामा देवी इसी का एक बेहतरीन उदाहरण हैं। श्यामा जी, ग्राम फतेहपुर, ब्लॉक विकासनगर, जिला देहरादून से संबंध रखती हैं। इन्हें अपने गांव की महिलाओं के बीच सशक्तिकरण के लिए विभिन्न कठिनाइयों और संघर्षों का सामना करना पड़ा है। प्रकृति में सक्रिय होने के कारण श्रीमती श्यामा देवी ने महिला जागृति समूह की स्थापना और शुरुआत की। अपने गांव की महिला समूह के बीच आर्थिक बाधाओं और स्वतंत्रता की कमी की समस्याओं को महसूस करने पर, श्रीमती श्यामा देवी ने दृढ़ता से अपना पक्ष रखा और महिला स्वयं सहायता समूहों पर कृषि विज्ञान केंद्र और ब्लॉक अधिकारियों द्वारा संबोधित की जाने वाली महिलाओं के एक समूह में शामिल हो गईं। आर्थिक तंगी और सामजिक बन्धनों में जकड़ी एक साधारण ग्रहिणी श्यामा जी आज ग्रामीण महिलाओं के उत्थान का माध्यम बन चुकी हैं।

श्रीमती श्यामा जी ऐसे गांव में रहती हैं, जहां अशिक्षित होने के अलावा, महिलाओं को घरों से बाहर कदम रखने की भी अनुमति नहीं थी। यही हाल श्यामा जी का भी था, जिनके परिवार के पास बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए आजीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं थे। ऐसे माहौल में भी श्यामा जी ने हार मानने के बजाय अपने

समूह द्वारा राशन की पैकेजिंग

आत्मबल को मजबूत किया। श्रीमती श्यामा देवी ने गांव की महिलाओं की स्थिति को समझते हुए 'महिला जागृति समूह' की नींव रखी। कृषि विज्ञान केंद्र और अन्य संबंधित विभागों के सहयोग से श्यामा जी ने स्वयं सहायता समूहों की अवधारणा को अपनाया

वित्तीय लाभ

केवीके ने महिला समूहों को सरकार की विभिन्न विकासात्मक योजनाओं जैसे कि टेक होम राशन आदि के बारे में जागरूक करने में मदद की। समूह भी राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के साथ जुड़ गया और अपने भविष्य के प्रयासों के लिए 1,00,000 रुपये की राशि प्राप्त की। इसके उपरांत समूह के सदस्यों ने विभिन्न आंगनबाड़ियों की आपूर्ति के लिए घर पर राशन की पैकेजिंग का कार्य शुरू किया । एक सफल महिला के रूप में, श्रीमती श्यामा जी ने अन्य महिलाओं को प्रेरित किया और फलों और सब्जियों के संरक्षण जैसे अन्य क्षेत्रों पर काम करना शुरू किया। इस प्रकार समूह का वार्षिक कारोबार 1.14 करोड़ रुपये से अधिक है, जबकि सदस्यों की सामूहिक बचत लगभग 2.40 लाख रुपये तक है।

केवीके की महत्वपूर्ण भूमिका

गांव की महिला समूहों के सशक्तिकरण में अपना योगदान प्रदान करने के लिए, कृषि विज्ञान केंद्र, ढकरानी ने श्रीमती श्यामा जी का

प्रसंस्करण से समृद्धि

मार्गदर्शन करने हेतु निर्धारित दिशा में अपना कार्य शुरू किया। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए केवीके के अधिकारी समय-समय पर महिला जागृति समूह के सदस्यों के साथ बातचीत करते रहे। स्वयं को सशक्त बनाने के लिए महिला समूहों की उत्सुकता के बारे में जानने पर, केवीके अधिकारियों ने उन्हें नई और बेहतर कृषि पद्धतियों के बारे में जागरूक किया और उन तरीकों को भी अपनाने पर जोर दिया, जिनके द्वारा वे छोटे हस्तशिल्प उत्पाद तैयार करके आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं।

इस दौरान, श्रीमती श्यामा देवी ने आसानी से उपलब्ध फसल/कच्चे माल के साथ कुछ स्थानीय व्यवसाय करने के बारे में जानने/सीखने के लिए भी महिला समूह बनाया। इस प्रक्रिया में, केवीके ने महिला समूहों को खाद्य उत्पादों की पैकेजिंग, संरक्षण तकनीक, मूल्य संवर्धन आदि के प्रशिक्षण के साथ-साथ ऐसे उत्पादों के विपणन के बारे में कुशलता से सीखने के लिए प्रेरित किया। इससे महिलाओं को आर्थिक रूप से स्थिर और स्वतंत्र बनने में मदद मिली।

विभिन्न उत्पादों की प्रदर्शनी

समय के साथ-साथ, महिला समूहों ने आत्मविश्वास विकसित किया और अधिक धन की बचत शुरू कर दी। स्वयं सहायता समूहों को जूट बैग बनाने का प्रशिक्षण दिया गया और जो महिलाएं सिलाई में निपुण थीं, उन्होंने स्वयं को जूट के बैग बनाने के लिए नियोजित किया। इस उद्यम में, केवीके ने उन्हें डिजाइनर बैग बनाने, ब्लॉक प्रिंटिंग आदि पर प्रशिक्षण प्रदान करके मूल्यवर्धन में मदद की। इस बीच, जिले में पॉलीथीन बैग पर प्रतिबंध के कारण, समूह ने खुद को पर्यावरण के अनुकूल बैग के उत्पादन में प्रशिक्षित किया, जो उस समय उच्च मांग पर थे। इस कार्य ने गांव की अन्य महिलाओं को भी समूह में शामिल होने और विभिन्न पहलुओं पर काम शुरू करने का रास्ता दिखाया।

मेहनत और समर्पण का सम्मान

एक सफल उद्यमी

श्रीमती श्यामा देवी अब स्वयं की कोशिश की बदौलत केवीके तथा आरएसईटीआई, शंकरपुर, देहरादून से प्रशिक्षित होकर पेशेवर महिला बन गई हैं। वह न केवल अपने समूह की महिलाओं को सिखाती और शिक्षित करती हैं, बल्कि उत्तराखंड के विभिन्न जिलों की महिलाओं को भी सिखाती हैं। सफल गृहिणी से लेकर एक सफल उद्यमी और एक विश्वसनीय परामर्शदाता तक, फतेहपुर गांव की श्रीमती श्यामा देवी की सफलता एक प्रेरणादायक कहानी है कि कैसे ग्रामीण भारत की महिलाएं अपने भाग्य को संभाल सकती हैं। कड़ी मेहनत और समर्पण के लिए इन्हें राज्य स्तरीय महिला सम्मान पुरस्कार एवं समूह को निदेशक, उत्तराखंड राज्य आजीविका मिशन द्वारा उत्तराखंड हिमान्या सरस मेला में भी सम्मानित किया जा चुका है। ■

(स्रोत: भाकृअनुप की वेबसाइट)

भाकृअनुप
ICAR

खेती

कृषि विज्ञान द्वारा ग्रामोत्थान की मासिक पत्रिका

वर्ष: 78, अंक: 4, अगस्त 2025

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. राजबीर सिंह** **अध्यक्ष**
उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

2. **डा. अनुराधा अग्रवाल** **सदस्य**
परियोजना निदेशक (डीकेएमए)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

3. **डा. विनोद कुमार सिंह** **सदस्य**
निदेशक
भाकृअनुप-क्रीडा, हैदराबाद

4. **डा. धीर सिंह** **सदस्य**
निदेशक
भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

5. **डा. के.के. सिंह** **सदस्य**
कुलपति
सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि विश्वविद्यालय
मोदीपुरम, मेरठ

6. **श्री हर्षवर्धन** **सदस्य**
प्रधान जनसंपर्क अधिकारी, इफको, नई दिल्ली

7. **श्री रितु राज** **सदस्य**
कृषि पत्रकार

8. **सुश्री नीलम त्यागी** **सदस्य**
प्रगतिशील किसान

9. **सुश्री सुनीता अरोड़ा** **सदस्य सचिव**
प्रभारी, हिन्दी संपादकीय एकक (डीकेएमए)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रधान संपादक
डा. अनुराधा अग्रवाल
संपादक
सुनीता अरोड़ा
संपादन सहयोग
गजेन्द्र

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन

प्रभारी (व्यवसाय एकक)
भूपेन्द्र दत्त

दूरभाष: 011-25843657
E-mail: bmicar@icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12

एक प्रति: रु. 30.00 वार्षिक : रु. 300.00
विशेषांक : रु. 100.00

E-mail : khetidipa@gmail.com

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

इस अंक में

विदेशक की कलम से
कृषि क्रांति से आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ते कदम - अनुराधा अग्रवाल

4 तिलहन
सोयाबीन की बहुगुणी प्रजाति-वीएल सोया 99
अनुराधा भारतीय, जे.पी. आदित्य, शेर सिंह, के.के. मिश्रा **और** निधि सिंह

14 यांत्रिकीकरण
कृषि उपकरणों से उत्पादकता में सुधार
राजीव कुमार, आदर्श कुमार **और** एच.एल. कुशवाह

7 नवाचार
वर्षा आधारित कृषि में जलकुंड की उपयोगिता
नेहा चौहान, पंकज सूद, संजीव संदल, शबनम **और** शकुंतला राही

18 महत्व
श्रीअन्न की कृषि में भूमिका
नीशू जोशी, सौरभ जोशी **और** जितेंद्र शर्मा

10 नया आयाम
आधुनिक कृषि में उपयोगी ऊर्ध्वाधर खेती
भूपेंद्र सिंह परमार, नरेंद्र सिंह चंदेल **और** अनुराग पटेल

22 पारिस्थितिकी
नदी प्रणाली में परिवर्तन के प्रभाव
अंजना एक्का, अरुण पंडित, गुंजन कर्नाटक **और** सुनीता प्रसाद

विषय-सूची

विषय-सूची

25 पशु आहार

हरा चारा फसलों का लाभकारी उत्पादन

विक्रम भारती, बृजेश कुमार, हरेन्द्र सिंह, राजेन्द्र प्रसाद **और** असीम कुमार मिश्र

28 भू-पोषण

नेमाटोड का मृदा पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव

दीपक कुमार, रविकांत शर्मा **और** राम नारायण कुम्हार

30 प्रभावी

अनुसूचित जाति उपयोजना से सशक्तिकरण

एच.के. दे **और** ए. साहा

सफलता गाथा

आवरण II

एक साधनहीन ग्रामीण गृहिणी बनी सफल उद्यमी

33 लाभदायक

गन्ना-मक्का अंतः फसल प्रणाली

एस.एल. जाट, मनीष ककरालिया, पशुपत वसमतकर, रामनिवास **और** एच.एस. जाट

36 कृषि कैलेण्डर

अगस्त के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, कपिला शेखावत, अंजली पटेल, एस.एस. राठौर और **आदित्य सिंह**

सामयिक

आवरण III

कृषि खबरें, देश-विदेश की

निदेशक की कलम से

कृषि क्रांति से आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ते कदम

16 जुलाई, 2025 को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने अपना 97वां स्थापना दिवस मनाया। यह केवल एक संस्थागत उत्सव नहीं, बल्कि भारतीय कृषि की वैज्ञानिक उपलब्धियों, तकनीकी नवाचारों और किसान केंद्रित दृष्टिकोण का प्रतीक भी बन चुका है। आज भारत न केवल खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर है, बल्कि कई वैश्विक सूचकांकों में शीर्ष स्थान पर भी पहुंच चुका है।

हाल के आंकड़ों के अनुसार हमारे देश का खाद्यान्न उत्पादन, ऐतिहासिक उच्चता पर 353.95 मिलियन टन, जिसमें चावल उत्पादन 149.1 मिलियन टन (वैश्विक निर्यात में भारत का योगदान 40 प्रतिशत); गेहूं उत्पादन 117.3 मिलियन टन; दूध उत्पादन 239.30 मिलियन टन (विश्व में शीर्ष); बागवानी 367.72 मिलियन टन (दुनिया के दूसरे स्थान पर); मत्स्य पालन 18.42 मिलियन टन (वैश्विक स्तर पर दूसरा) रहा।

उन्नत तकनीकों द्वारा संचालित इन उपलब्धियों ने खाद्य भण्डार को मजबूत किया है, जिससे गेहूं का निर्यात संभव हुआ और अतिरिक्त चावल भण्डारण सुविधाओं की आवश्यकता हुई।

जलवायु परिवर्तन, खंडित भू-स्वामित्व और कीटों के संक्रमण जैसी चुनौतियों के बावजूद निरंतर कृषि विकास कार्य जारी है। इसके साथ ही प्राकृतिक और जैविक खेती को प्राथमिकता देने, दलहन एवं तिलहन की उत्पादकता बढ़ाने और सीमांत किसानों के लिए उपयुक्त कॉम्पैक्ट, किफायती और पोर्टेबल मशीनरी विकसित करने की आवश्यकता है।

प्रत्येक वैज्ञानिक, प्रत्येक शोध और प्रत्येक तकनीक किसान की भलाई के लिए समर्पित हो, इसके लिए नीति, नवाचार एवं फोकस 'खेत' की दिशा में ही होना चाहिए। इन उपलब्धियों के साथ, भाकृअनुप न केवल आत्मनिर्भर कृषि की दिशा में अग्रसर है, बल्कि इसने वैज्ञानिकता, किसान केंद्रित अनुसंधान और स्थिरता के नये आयाम भी स्थापित किये हैं।

भाकृअनुप के 97 वर्षों का सफर केवल प्रयोगशालाओं में हुए शोधों की गाथा नहीं है, बल्कि यह भारत के खेतों में हुए परिवर्तन, किसानों के जीवन में आई स्थिरता और वैश्विक कृषि में भारत की बढ़ती भूमिका का साक्षात प्रमाण भी है। विज्ञान का प्रत्येक कदम खेत की ओर उठे और प्रत्येक किसान को लाभ मिले, यही आत्मनिर्भर भारत का भविष्य है।

(अनुराधा अग्रवाल)

सोयाबीन की बहुगुणी प्रजाति-वीएल सोया 99

अनुराधा भारतीय, जे.पी. आदित्य, शेर सिंह, के.के. मिश्रा और **निधि सिंह**

"सोयाबीन *(ग्लाइसिन मैक्स)* एक प्रमुख तिलहनी फसल है, जिसकी उपयोगिता विश्वभर में खाद्य तेल उत्पादन एवं प्रोटीन आहार के रूप में दिनों-दिन बढ़ रही है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन के दौर में, खाद्य तेल एवं प्रोटीनयुक्त आहार की बढ़ती मांग को पूर्ण करने हेतु सोयाबीन की बहुगुणी उन्नत प्रजातियों के विकास पर जोर दिया जा रहा है। सोयाबीन की उच्च उत्पादकता, रोग प्रतिरोधकता, जलवायु सहिष्णुता और बेहतर पोषण गुणवत्तायुक्त बहु-लाक्षणिक किस्में आधुनिक कृषि के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए भाकृअनुप-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा द्वारा सोयाबीन की उच्च उपज देने वाली प्रजाति 'वीएल सोया 99' का विकास किया गया है, जो पीला मोजैक, फलीबेधक एवं मण्डुकाक्ष पर्ण चित्ती जैसे प्रमुख रोगों के लिए प्रतिरोधी है। इस प्रकार आनुवंशिक रूप से फसल सुरक्षा में बढ़ोतरी, सोयाबीन के उत्पादन में स्थिरता एवं व्यापक अनुकूलन क्षमता के लिए अत्यंत आवश्यक है। उच्च उपज क्षमता के साथ-साथ गुणवत्तायुक्त तेल की अधिक मात्रा, अधिक दूध, टोफू उत्पादन तथा उत्कृष्ट कृषि गुणों से सम्पन्न बहु-लाक्षणिक सोयाबीन प्रजाति 'वीएल सोया 99' का विकास, विस्तार एवं मूल्यवर्धित उत्पादों में उपयोग दीर्घकालिक कृषि सुधार और खाद्य सुरक्षा एवं टिकाऊ उत्पादन प्रणाली के लिए लाभकारी है।"

भारत में सोयाबीन एक प्रमुख तिलहनी फसल है, जो कृषि अर्थव्यवस्था, पोषण और पर्यावरण की दृष्टि से अत्यंत लाभकारी है। यह फसल विशेष रूप से मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र एवं राजस्थान में वृहद स्तर पर उगाई जाती है। सोयाबीन कृषकों के लिए एक लाभदायक फसल है।

वर्षाश्रित क्षेत्रों में कम लागत में भी सोयाबीन फसल की उत्पादन क्षमता काफी अच्छी है। व्यावसायिक दृष्टि से भी इसका उपयोग व्यापक रूप से तेल उत्पादन, खाद्य उत्पादों, पशु चारा, जैविक ईंधन, औद्योगिक उत्पादों के साथ ही प्रसंस्करण उद्योग में भी किया जाता है। अतः सोयाबीन की बहुपयोगिता रोजगार के अवसर बढ़ाने में भी सहायक है।

भाकृअनुप-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा-263601 (उत्तराखण्ड)

सारणी 1. वीएल सोया 99 के वांछनीय गुणों का विवरण

औसत उपज	24-25 क्विंटल/हैक्टर
औसत परिपक्वता	117 दिन
रोग प्रतिरोधिता	पीला मोजैक वायरस, पत्ती या फलीबेधक रोग एवं मण्डुकाक्ष पर्ण चित्ती रोग
तेल की मात्रा	20.18 प्रतिशत
दूध उत्पादन	8.51 लीटर/कि.ग्रा.
तेल उत्पादन	484.2 कि.ग्रा./हैक्टर
हार्वेस्ट इंडेक्स	41.3 प्रतिशत
उत्पादन दक्षता	25.6 कि.ग्रा./हैक्टर/दिन
संसाधन उपयोग दक्षता	3.98 कि.ग्रा./हैक्टर/मि.मी.

वीएलएस 99 की मण्डुकाक्ष पर्ण चित्ती रोग से प्रतिरोधिता

पोषण की दृष्टि से, सोयाबीन प्रोटीन (40 प्रतिशत) का एक समृद्ध स्रोत है और शाकाहारियों के लिए प्रोटीन का एक उत्कृष्ट विकल्प माना जाता है। इसमें आवश्यक अमीनो अम्ल, ओमेगा-3 फैटी एसिड और एंटीऑक्सीडेंट होते हैं, जो हृदय स्वास्थ्य और पोषण के लिए लाभकारी हैं। यही कारण है कि सोया दूध, टोफू और सोया नट्स जैसे उत्पाद तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं। इसके साथ ही सोयाबीन पर्यावरण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। यह नाइट्रोजन स्थिरीकरण में मदद करता है, जिससे मृदा की उर्वरता बनी रहती है।

भारत में सोयाबीन का क्षेत्रफल वर्ष 1970-71 में मात्र 30 हजार हैक्टर था, जो 2022 तक तेजी से बढ़कर 14,985 हजार हैक्टर हो गया। इस क्षेत्रफल विस्तार के साथ, सोयाबीन का उत्पादन भी 10 हजार टन से बढ़कर 13,084 हजार टन तक पहुंच गया। हालांकि, देश में सोयाबीन की उत्पादकता प्रमुख उत्पादक राज्यों (मध्य प्रदेश-639 कि.ग्रा./हैक्टर, महाराष्ट्र-1460 कि.ग्रा./हैक्टर, राजस्थान-969 कि.ग्रा./हैक्टर तथा कर्नाटक-1212 कि.ग्रा./हैक्टर) में अभी भी अपेक्षाकृत कम है। ऐसी स्थिति में, देश में तिलहन उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए उच्च उपज देने वाली, व्यापक अनुकूलन क्षमता वाली बहुरोग प्रतिरोधी और बेहतर खाद्य गुणवत्ता वाली, नई सोयाबीन किस्मों का विकास करना आवश्यक है।

उत्तर-पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र, (हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड) में भी सोयाबीन खरीफ के मौसम की एक महत्वपूर्ण दलहनी फसल है। यह फसल इस क्षेत्र की खाद्य एवं पोषण आवश्यकता को पूरा करने के साथ-साथ पारंपरिक फसलचक्र में भी सुधार करती है तथा यहां की वर्षा आधारित जैविक खेती के लिए भी उपयुक्त है। इस फसल की खेती में रोगों एवं कीटों के प्रकोप तथा जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियां भी शामिल हैं। अतः इन्हें ध्यान में रखते हुए मल्टीट्रेट (बहुगुणी) उन्नत किस्मों का विकास अत्यंत आवश्यक है।

उत्तर-पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों के कृषकों की आवश्यकता की पूर्ति हेतु सोयाबीन की बहुगुणी उन्नत किस्म *वीएल सोया-99* का विकास किया गया है। यह उच्च उत्पादकता, सोयाबीन के प्रमुख रोगों (पीला मोजैक, फलीबेधक एवं मण्डुकाक्ष पर्ण चित्ती) से प्रतिरोधी है। इसके अलावा यह गुणवत्तायुक्त तेल की अधिक मात्रा, अधिक दूध, टोफू उत्पादन के लिए उपयुक्त होने के साथ-साथ उत्कृष्ट कृषि गुणों से भी संपन्न है।

वीएल सोया 99

देशभर में सोयाबीन की अब तक 150 से भी अधिक प्रजातियां विकसित की जा चुकी हैं। बहुत कम सोयाबीन किस्में ऐसी हैं, जो अपने अनुकूलन क्षेत्र के बाहर सफलतापूर्वक उगाई जाती हैं। इसका मुख्य कारण विभिन्न रोगों एवं कीटों द्वारा होने वाला नुकसान है। इनमें पीला मोजैक प्रमुख रोग है, जो सभी सोयाबीन उत्पादक क्षेत्रों में गंभीर क्षति (80 प्रतिशत तक उपज हानि) पहुंचाता है। इसी प्रकार, पत्ती या फलीबेधक रोग भारत में सोयाबीन का दूसरा सबसे व्यापक रोग है, जो गर्म और आर्द्र जलवायु में अधिक फैलता है। रोग की तीव्रता के आधार पर यह 100 प्रतिशत तक उपज हानि कर सकता है।

कृषकों द्वारा 'वीएल सोया 99' का सफल परीक्षण

वर्ष 2023 और 2024 में कोट्यूरा, भटगांव, भीतुली एवं सिरकोट गांवों में उन्नत किस्मों के प्रयोग से किसानों को बेहतर उपज प्राप्त हुई। उन्नत प्रजातियों के साथ-साथ वैज्ञानिक उत्पादन तकनीकों, जैसे समय से बुआई, पंक्ति में बुआई, बीजोपचार, बीज दर, संतुलित मात्रा में खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग, खरपतवार नियंत्रण इत्यादि एवं कृषि कार्यों को आसान बनाने हेतु लघु कृषि यंत्रों का समावेश किया गया। कृषि वैज्ञानिकों ने इन फसलों की बढ़वार, पुष्पण, रोग तथा कीट प्रतिरोधिता एवं परिपक्वता का निरीक्षण समय-समय पर किया, जिससे फसलों का उत्पादन अधिकाधिक हो सके और किसानों द्वारा इन उन्नत प्रजातियों को अपनाकर लाभ अर्जित किया जा सके। कुल मिलाकर, 78 किसानों (14 पुरुष एवं 64 महिलाएं) ने उन्नत किस्म के बीज लगाएं, जिससे औसत उपज 2090 कि.ग्रा./हैक्टर प्राप्त हुई, जो स्थानीय किस्म (1621 कि.ग्रा./हैक्टर) की तुलना में 28.93 प्रतिशत अधिक थी। ये आंकड़े दर्शाते हैं कि उन्नत किस्मों के उपयोग से किसानों को अधिक उपज और आर्थिक लाभ प्राप्त हो सकता है। इन क्षेत्रों में प्रक्षेत्र दिवसों का भी आयोजन किया गया, जिसमें कृषकों को सोयाबीन के मूल्यवर्धित उत्पादों जैसे-टोफू, दूध, बड़ी, आटा इत्यादि बनाने की जानकारी दी गयी, ताकि कृषक सोयाबीन की खेती के साथ ही मूल्यवर्धित उत्पाद बनाकर उनसे भी अधिकाधिक लाभ ले सकें और अपनी आय में वृद्धि कर सकें।

उत्तर-पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों में, मण्डुकाक्ष पर्ण चित्ती रोग भी गर्म और आर्द्र क्षेत्रों में एक गंभीर रोग है, जो 60 प्रतिशत तक उपज की क्षति कर सकता है। इन चुनौतियों को देखते हुए उच्च उपज देने वाली, बहुरोग प्रतिरोधी और जलवायु परिवर्तन सहिष्णु, सोयाबीन किस्मों की पहचान करना आवश्यक है, जिससे राष्ट्रीय संकरण कार्यक्रमों को सशक्त किया जा सके। अब तक कोई भी सोयाबीन की किस्म ऐसी नहीं है, जो पीला मोजैक विषाणुपत्ती या फलीबेधक रोग एवं मण्डुकाक्ष पर्ण चित्ती जैसे हानिकारक रोगों से प्रतिरोधी होने के साथ-साथ वांछनीय गुणवत्ता और कृषि विशेषताओं से युक्त हो।

'वी एल सोया 99' को 'वी एल एस 75' और 'जे एस 95-60' के संकरण से विकसित किया गया है। इसका मूल्यांकन अखिल भारतीय समन्वित परीक्षण के अंतर्गत खरीफ वर्ष 2019-2023 के दौरान किया गया। इसकी औसत उपज तुलनीय किस्मों 'वी एल सोया 89' (10.90 प्रतिशत), 'वी एल सोया 63' (12.90 प्रतिशत) एवं 'पी एस 1556' (25.10 प्रतिशत) की अपेक्षा अधिक पाई गई तथा इस किस्म ने 8 परीक्षण स्थलों में से 6 स्थलों में सर्वोच्च प्रदर्शन किया। इसके साथ ही इसे पीला मोजैक वायरस, पत्ती या फलीबेधक रोग एवं मण्डुकाक्ष पर्ण चित्ती रोग से प्रतिरोधी पाया गया।

सोयाबीन के मूल्यवर्धन पर प्रशिक्षण

इसके अतिरिक्त, इसके दानों की गुणवत्ता भी तुलनीय किस्मों से अच्छी पायी गयी। इसमें तेल की मात्रा (20.18 प्रतिशत) एवं तेल उत्पादन (484.2 कि.ग्रा./हैक्टर) सर्वश्रेष्ठ तुलनीय किस्म वी एल सोया 89 (19.02 प्रतिशत तेल और 435.3 कि.ग्रा./हैक्टर तेल उत्पादन) से अधिक पाया गया। इसके साथ ही इसमें दूध उत्पादन (8.51 ली./कि.ग्रा.) तथा टोफू उत्पादन (1.79 कि.ग्रा./कि.ग्रा.) भी 'वी एल सोया 63' (8.31 ली./कि.ग्रा.) और 'एन आर सी 197' (1.58 कि.ग्रा./कि.ग्रा.) से अधिक पाया गया। 'वी एल सोया 99', अधिक फसल सूचकांक (41.3 प्रतिशत), उत्पादन दक्षता (25.6 कि.ग्रा./हैक्टर/दिन) और बेहतर संसाधन उपयोग दक्षता (3.98 कि.ग्रा./हैक्टर/मि.मी.) जैसी वांछनीय कृषि विशेषताओं से भी युक्त है।

प्रभावी गुणों के कारण, 'वी एल सोया 99' व्यापक अनुकूलन क्षमता, दीर्घकालिक रोग प्रतिरोधिता, उच्च पोषण गुणवत्ता और अधिक उपज प्रदान करने की क्षमता रखती है। इससे भविष्य में सोयाबीन उत्पादन में इसका महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। सोयाबीन की किस्म 'वी एल सोया 99' के प्रदर्शन को देखते हुए, इसे सेंट्रल सब कमेटी ऑन क्रॉप स्टैंडर्ड्स एंड रिलीज ऑफ वेरायटीज ऑफ एग्रीकल्चरल क्रॉप्स द्वारा उत्तर-पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों हेतु संस्तुत किया गया है। ■

भाकृअनुप की द्विमासिक बागवानी पत्रिका
'फल फूल' जुलाई-अगस्त, 2025 अंक के प्रमुख आकर्षण

- गुणों से भरपूर नागफली फल
- पर्वतीय क्षेत्रों में गैर-मौसमी सब्जी उत्पादन
- रजनीगंधा पुष्प की उन्नत खेती
- हरी पत्तेदार सब्जियों से पोषण वृद्धि
- स्ट्रॉबेरी का गर्म क्षेत्रों में भरपूर उत्पादन
- चौलाई की व्यावसायिक खेती
- खीरा फसल में रोगों की रोकथाम
- आम में फल मक्खी का जैविक प्रबंधन
- फूलों की जलवायु अनुकूल खेती
- बदलते मौसम में लीची की खेती
- जम्मू-कश्मीर में मशरूम का लाभकारी उत्पादन
- अमरूद में अंतरजाति संकरण से उकठा रोग का निदान
- लहसुन की उन्नत खेती
- मानसून में करें बागों की विशेष देखभाल

संपर्क सूत्रः प्रभारी, व्यवसाय एकक, भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाषः 25843657, www.icar.org.in

वर्षा आधारित कृषि में जलकुंड की उपयोगिता

नेहा चौहान[1], **पंकज सूद**[1], **संजीव संदल**[2], **शबनम**[3] और **शकुंतला राही**[1]

"जल, मानव जाति के लिए उपलब्ध सबसे अपरिहार्य प्राकृतिक संसाधन है। पृथ्वी के सभी नवीकरणीय संसाधनों में पानी का एक अद्वितीय स्थान है। जल प्राकृतिक संसाधनों में सबसे अधिक प्रबंधनीय है क्योंकि यह विचलन, परिवहन, भंडारण और पुनर्चक्रण में सक्षम है। ये सभी गुण पानी को मनुष्य के लिए इसकी महान उपयोगिता प्रदान करते हैं। पिछले कुछ वर्षों में विभिन्न वैज्ञानिक आयोजनों में जल संसाधनों के संरक्षण और रखरखाव की आवश्यकता पर जोर दिया गया है और इस विषय को मुख्य प्रोत्साहन भी मिला है। वर्षा जल के उचित प्रबंधन की कमी के साथ-साथ उपयुक्त मृदा और जल संरक्षण उपायों की कमी के कारण विशेष रूप से मानसून के बाद के मौसम में पानी की गंभीर कमी हो जाती है और फसल उत्पादकता भी प्रभावित होती है। मई-अक्टूबर वर्षा जल संचयन के लिए प्रमुख अवधि है, जबकि नवंबर-अप्रैल को कम पानी या पानी की कमी की अवधि के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार वर्षा जल संचयन में घरेलू और साथ ही छोटे और सीमांत किसानों के लिए सिंचाई जल स्रोत होने की जबरदस्त क्षमता है। पहाड़ी क्षेत्रों में जल संचयन संरचनाओं की प्रमुख बाधाओं में निर्माण की उच्च लागत और भंडारण टैंकों से रिसाव बड़ी हानि है। उपरोक्त तथ्यों के निवारण हेतु जलकुंड नामक कम लागत वाली वर्षा जल संचयन संरचना छोटे और सीमांत किसानों के लिए फायदेमंद है। जल संचयन एक पारंपरिक संरक्षण तकनीक है, जो पानी के संरक्षण में मदद करती है और खासकर शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में कृषि उत्पादन को बढ़ावा देती है।"

देश की वार्षिक औसत वर्षा 1200 मि.मी. है। यह स्थान और समय दोनों में भिन्न है जो विभिन्न क्षेत्रों के लिए पानी की उपलब्धता को प्रभावित करते हैं। भारत में उपलब्ध पानी का 80 प्रतिशत भाग खेती में, शेष 20 प्रतिशत पीने के लिए, उद्योग और ऊर्जा क्षेत्र में उपयोग किया जा रहा है। बढ़ती जनसंख्या से जल संसाधनों पर अत्यधिक दबाव पड़ रहा है। प्रति व्यक्ति वार्षिक जल उपलब्धता वर्ष 1950 में 5000 घन मीटर से वर्ष 2010 में 1300 घन मीटर तक और वर्ष 2025 तक 1000 घन मीटर से नीचे आने का अनुमान है। इससे देश को भविष्य में जलवायु परिवर्तन के कारण बार-बार बाढ़, सूखा, बढ़ते तापमान आदि घटनाओं का सामना करना पड़ सकता है। भारत में अन्न उत्पादन में 60 प्रतिशत सिंचित और 40 प्रतिशत वर्षा आधारित क्षेत्रों का

[1]कृषि विज्ञान केंद्र, मंडी स्थित सुंदरनगर, (हिमाचल प्रदेश); [2]मृदा विज्ञान विभाग, चौधरी सरवन कुमार हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर (हिमाचल प्रदेश); [3]बागवानी महाविद्यालय, थुनाग, डा. वाईएस परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन (हिमाचल प्रदेश)

योगदान है। सिंचित क्षेत्र उपज में पठार पर पहुंच गए हैं। वर्षा आधारित क्षेत्रों को खाद्य उत्पादन बढ़ाने के लिए भविष्य में गुंजाइश प्रदान करने वाला माना जाता है।

कृषि में फसल उत्पादन के लिए पानी सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक है। शुष्क मौसम के दौरान पर्याप्त मात्रा में

तालाब में प्लास्टिक शीट बिछाने के लाभ

- रिसाव के माध्यम से होने वाली पानी की हानि को अधिकतम तक कम करना।
- लंबे समय तक पानी की उपलब्धता बनाए रखना।
- प्लास्टिक फिल्म के साथ अस्तर से छिद्रपूर्ण मृदा (लाल मृदा) में लाभ होता है, जहां तालाबों और जल संचयन टैंकों में न्यूनतम पानी जमा रहता है।
- शीट निचले क्षेत्र को जल जमाव की समस्या से बचाती है और संग्रहित जल में लवणों का प्रवेश ऊपर की ओर जाने से रोकती है।
- संचित पानी का विवेकपूर्ण उपयोग, पीने के पानी के भंडारण के उद्देश्य, मछली पालन के लिए और फसल के महत्वपूर्ण चरणों के दौरान पूरक सिंचाई प्रदान करने के लिए किया जाता है।

जलकुंड के लिए उपयुक्त माप का तैयार गड्ढा

पानी की अनुपलब्धता किसानों के लिए एक गंभीर समस्या बन जाती है। उपयुक्त वर्षा जल प्रबंधन स्थितियों की कमी के साथ-साथ उपयुक्त मृदा और जल संरक्षण उपायों की कमी के कारण विशेष रूप से मानसून के बाद के मौसम में पानी की गंभीर कमी हो जाती है और फसल उत्पादकता भी प्रभावित होती है। वहीं वर्षा जल संचयन में घरेलू उपयोग के साथ-साथ क्षेत्र के छोटे और सीमांत किसानों के लिए सिंचाई जल स्रोत होने की जबरदस्त क्षमता है। वर्षा जल संचयन और कृषि में इसके विवेकपूर्ण उपयोग के माध्यम से समस्या को कम किया जा सकता है। शुष्क मौसम के दौरान नमी की कमी की स्थिति में फसलों को सिंचाई प्रदान करने के लिए वर्षा जल संचयन संरचनाओं के माध्यम से प्रत्यक्ष वर्षा संग्रह किसानों के लिए अत्यधिक फायदेमंद हो सकता है। निक्रा परियोजना में तकनीकी विकास से वर्षा जल संचयन तकनीकों में सुधार हुआ है, जो बढ़ती आबादी के लिए आहार की उपलब्धता की सुनिश्चितता में मदद करेगा।

जलकुंड में वर्षा जल संचयन के संबंध में जागरूकता कार्यक्रम

जलकुंड बनाने हेतु स्थान चयन

- जलकुंड के स्थान को फसल जलग्रहण क्षेत्रों के ऊंचे स्थानों पर चयन किया जाता है ताकि बिना किसी अतिरिक्त ऊर्जा का उपयोग किए गुरुत्वाकर्षण बल के माध्यम से पानी का पुनर्चक्रण किया जा सके।
- जिस क्षेत्र को सिंचित करने की आवश्यकता है उसके आवश्यकतानुसार वांछित आकार का एक गड्ढा खोदें।
- जल संचयन के लिए केवल सीधे वर्षा के पानी को इकट्ठा करना चाहिए। बहते पानी को जलकुंड में एकत्रित नहीं करना चाहिए। इसमें सिल्ट और मृदा पानी के साथ जमा हो सकते हैं। साथ ही ये टैंक की आयु को कम करते हैं। छत के ऊपर के पानी को इकट्ठा करके जलकुंड में भरा जा सकता है।

एचडीपीई पॉलीफिल्म बिछाना

- शीट के एक छोर से अस्तर सामग्री बिछाना शुरू करें। सुनिश्चित करें कि यह चारों कोनों में मुड़ा हुआ है। कुंड में अस्तर की चादर इस तरह बिछाई जाती है कि वह नीचे और दीवारों को शिथिल और समान रूप से छूती रहे एवं कुंड की लंबाई तथा चौड़ाई के चारों ओर लगभग 50 सें.मी. की चौड़ाई तक फैली रहे। कुंड के चारों ओर

25-25 सें.मी. खाई खोदें और अस्तर सामग्री के लगभग 25 सें.मी. बाहरी किनारे को मृदा में दबा दें ताकि यह चारों ओर से कसकर बंध जाए।

- जलकुंड के किनारे से 30 सें.मी. की जगह छोड़कर किनारों पर 30 सें.मी. चौड़ाई और 30 सें.मी. गहराई की एक खाई खोदें।
- किनारों और तली को 250 जीएसएम मोटाई वाले सिलपॉलिन पॉलीफिल्म से तैयार करें।
- जलकुंड के ऊपरी तरफ ढलान पर अधिमानत: 30 सें.मी. चौड़ाई और 30 सें.मी. गहराई का एक जल निकासी चैनल बनाएं, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि गंदा पानी अंदर नहीं आएगा। इसी तरह अतिरिक्त पानी की सुरक्षित निकासी के लिए जलकुंड के निचले हिस्से पर एक आउटलेट चैनल बनाएं।

जलकुंड को ढकना

- वाष्पीकरण हानि से बचने के लिए संग्रहित पानी को विशेष रूप से ऑफ सीजन के दौरान छप्पर, घास या स्थानीय रूप से उपलब्ध अन्य सामग्री से ढक देना चाहिए। यदि इसे ढका न जाए तो 70-80 प्रतिशत पानी वाष्पीकरण के कारण नष्ट हो जाता है।

जल संरक्षण में उपयोगी जलकुंड प्रणाली

कृषि विज्ञान केंद्र, मंडी द्वारा जलकुंड का प्रदर्शन

- प्रत्येक सप्ताह पानी देने के बाद पानी की सतह पर 10 मि.ली. प्रति वर्ग मीटर की दर से नीम के तेल का उपयोग भी पानी के नुकसान को कम करने के लिए प्रभावी है।

बाड़ लगाना

- जलकुंड में बच्चों और पशुओं के गिरने और डूबने की आशंका से बचने के लिए सावधानी बरतनी चाहिए। इस प्रकार की किसी भी दुर्घटना को नियंत्रित करने के लिए लगभग 1 मीटर ऊंचाई की बांस की बाड़ पर्याप्त है।

जलकुंड के लाभ

- बरसात के मौसम में वर्षाजल को सीधे जलकुंड में संग्रहित किया जा सकता है। इसका उपयोग सफल खेती के लिए फसलों को सुरक्षात्मक सिंचाई प्रदान करने के लिए किया जा सकता है। अन्यथा, इससे मृदा का क्षरण हो सकता है और अपवाह के माध्यम से पोषक तत्वों की हानि हो सकती है।
- संग्रहित जल का उपयोग पशुधन, शूकरपालन, मुर्गीपालन और बत्तख पालन के लिए भी किया जा सकता है।
- संग्रहित जल में मछलीपालन भी किया जा सकता है।

क्षेत्रफल के अनुसार बड़े आकार के जलकुंड का भी निर्माण किया जा सकता है। छोटे आकार के जलकुंडों को कम लागत की आवश्यकता होती है और वे रखरखाव में आसान होते हैं। ऐसे में, छोटे आकार के जलकुंडों की सिफारिश की जाती है, जो छोटे और सीमांत श्रेणी के किसानों के लिए अधिक किफायती और उपयोगी होते हैं। यद्यपि मानसून के मौसम के दौरान विभिन्न पहाड़ी क्षेत्रों के अधिकांश हिस्सों में पर्याप्त वर्षा होती है, लेकिन इसका अधिकांश भाग खड़ी ढलानों से अपवाह के रूप में बह जाता है और व्यावहारिक उपयोग के लिए उपलब्ध नहीं होता है। पहाड़ों में जल संचयन की अहम भूमिका है।

जलकुंड की खुदाई

- चयनित स्थल पर जलकुंड की खुदाई मानसून शुरू होने से पहले पूरी कर ली जानी चाहिए। अस्तर सामग्री को नुकसान से बचाने के लिए चट्टानों या पत्थरों को हटाकर कुंड के तल और किनारों को समतल किया जाना चाहिए। खोदी गई मिट्टी से बने तटबंध को अच्छी तरह से दबाया जाना चाहिए।
- अस्तर से पहले कीटों या चूहों को नियंत्रित करने के लिए प्रति जीवित बिल में 1 टैबलेट या टुकड़े की दर से एल्युमिनियम फॉस्फाइड या चूहा केक का उपयोग करना चाहिए।
- स्थानीय रूप से उपलब्ध सूखी पत्तियों के साथ 3-5 इंच मोटी परत के बाद भीतरी दीवार की मजबूती के लिए 5:1 के अनुपात में मिट्टी और गाय के गोबर से प्लास्टर करना आवश्यक है। धान के भूसे और घास-फूस का उपयोग प्लास्टर के लिए नहीं किया जाना चाहिए। ये चूहों को आकर्षित करते हैं, जो अस्तर सामग्री को नुकसान पहुंचा सकते हैं।
- जलकुंड की भीतरी दीवारों की सतह और तली पर कीटनाशक (क्लोरोपायरीफॉस 35 ईसी 2 मि.ली. पानी) का छिड़काव करें।

आधुनिक कृषि में उपयोगी ऊर्ध्वाधर खेती

भूपेंद्र सिंह परमार[1], **नरेंद्र सिंह चंदेल**[2] और **अनुराग पटेल**[3]

ऊर्ध्वाधर खेती एक नवाचार प्रणाली है, जो सीमित भूमि और बढ़ती खाद्य मांग को ध्यान में रखते हुए विकसित की गई है। इसमें विभिन्न तकनीकों जैसे-हाइड्रोपोनिक्स, एरोपोनिक्स और एक्वापोनिक्स का उपयोग कर मृदा रहित पौधे उगाए जाते हैं। यह विधि नियंत्रित पर्यावरण प्रणाली में काम करती है, जहां तापमान, आर्द्रता, जल और पोषक तत्वों को नियंत्रित किया जाता है। ऊर्ध्वाधर खेती से जल का उपयोग 90 प्रतिशत तक कम होता है। इसका उत्पादन वर्षभर संभव होता है, जिससे शहरी क्षेत्रों में खाद्य आपूर्ति को बढ़ावा मिलता है। इसमें कृत्रिम रोशनी, जलवायु नियंत्रण और स्वचालन तकनीकों का उपयोग किया जाता है, जिससे उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। हालांकि, उच्च प्रारंभिक निवेश और ऊर्जा खपत कुछ समस्याएं हैं। तकनीकी प्रगति और सस्ती ऊर्जा के साथ यह प्रणाली भविष्य में खाद्य सुरक्षा और पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित कर सकती है। भारत जैसे विकासशील देशों में, जहां भूमि सीमित है, ऊर्ध्वाधर खेती एक महत्वपूर्ण समाधान साबित हो सकती है।

विश्व स्तर पर खाद्य उत्पादन की बढ़ती मांग, जलवायु परिवर्तन की चुनौतियां, और सीमित कृषि योग्य भूमि ने खेती के क्षेत्र में नवाचार और सतत समाधान की आवश्यकता को पहले से कहीं अधिक बढ़ा दिया है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए नियंत्रित पर्यावरण में खेती की आधुनिक पद्धतियां तेजी से लोकप्रिय हो रही हैं। ऐसी ही एक प्रभावशाली पद्धति है-ऊर्ध्वाधर खेती (वर्टिकल फार्मिंग), जिसमें उन्नत तकनीकों का उपयोग कर कम स्थान में अधिक उत्पादन संभव होता है।

पर्यावरणीय खेती की इस नवीनतम प्रणाली में पौधों को नियंत्रित वातावरण, कृत्रिम प्रकाश व्यवस्था और ऊर्जा-कुशल संसाधनों की सहायता से ऊर्ध्वाधर ढांचे में उगाया जाता है। यह पद्धति विशेष रूप से उन शहरी क्षेत्रों में उपयोगी है, जहां भूमि सीमित है और जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है।

इस प्रकार, वर्ष 2050 तक ऊर्ध्वाधर खेती का प्रचलन बढ़ने की व्यापक संभावनाएं हैं और यह भविष्य की खेती का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनेगी। भारत में जहां खेती योग्य भूमि सीमित है, वहां ऊर्ध्वाधर खेती एक टिकाऊ और व्यावहारिक समाधान के रूप में सामने आ रही है। यह न केवल भूमि और जल का संरक्षण करती है, बल्कि ऊर्जा की खपत को भी कम करती है।

इस लेख में ऊर्ध्वाधर खेती की अवधारणा,

[1]वरिष्ठ शोध अध्येता; [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक, भाकृअनुप-केंद्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान, भोपाल; [3]सहायक प्रोफेसर, संजीव अग्रवाल ग्लोबल एजुकेशनल (सेज) विश्वविद्यालय, भोपाल

इसकी प्रमुख तकनीकें, उपयोग में आने वाले संसाधन और इसके लाभों की विस्तार से चर्चा की गई है। यह समझना आवश्यक है कि किस प्रकार ऊर्ध्वाधर खेती शहरी क्षेत्रों में सतत कृषि के लिए एक व्यवहार्य विकल्प बनती जा रही है।

ऊर्ध्वाधर खेती

यह एक उन्नत कृषि पद्धति है, जिसमें पौधों को बहु-स्तरीय संरचनाओं में उगाया जाता है। इस विधि में नियंत्रित वातावरण, कृत्रिम प्रकाश स्रोत (जैसे एलईडी) और स्वचालित सिंचाई एवं पोषण प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। पारंपरिक खेती की तुलना में यह विधि कम भूमि में अधिक उत्पादन की क्षमता रखती है और जल, ऊर्जा एवं संसाधनों की बचत करती है।

ऊर्ध्वाधर खेती विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है, जहां स्थान की कमी होती है। यह तकनीक भविष्य की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। यह अधिक खाद्य उत्पादन के लिए कम भूमि का उपयोग करने के साथ-साथ रासायनिक पदार्थों से बचने का लाभ प्रदान करती है। यह विधि जल, वायु और गैसों जैसे कारकों को नियंत्रित करने वाले वातावरण में मिट्टी के बिना फसलों को उगाने के लिए हाइड्रोपोनिक्स, एरोपोनिक्स और एक्वापोनिक्स जैसी तकनीकों का उपयोग करती है।

ग्रीनहाउस की तरह, ऊर्ध्वाधर खेती का उद्देश्य सीमित स्थानों में फसल उत्पादन को अधिकतम करना है, जहां कृत्रिम परिस्थितियां उगाई जा रही फसलों के लिए विकास को अनुकूलित करती हैं।

प्रमुख घटक

ऊर्ध्वाधर खेती में कई महत्वपूर्ण घटक होते हैं, जो फसलों, उपलब्ध तकनीकी संसाधनों और फार्म के आकार के आधार पर भिन्न हो सकते हैं। इसके मुख्य घटक निम्न हैं:

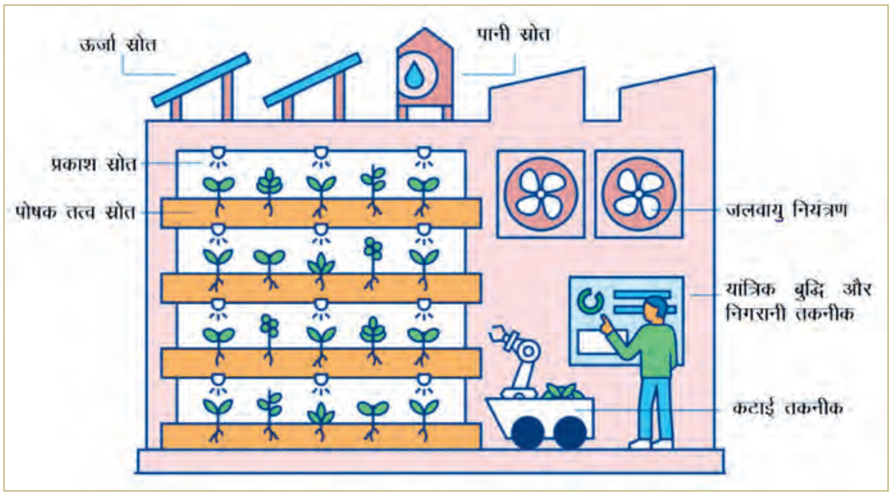

ऊर्ध्वाधर खेती प्रणाली

सारणी 1. ऊर्ध्वाधर खेती में तकनीक की भूमिका

क्र.सं.	तकनीक	भूमिका
1.	स्वचालन	फसलों की बुआई और कटाई को अधिक कुशल बनाता है।
2.	कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए.आई.)	बड़े पैमाने पर सिंचाई, पोषक तत्वों और पौधों की सेहत पर डेटा विश्लेषण और निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है।
3.	इंटरनेट ऑफ थिंग्स (आई.ओ.टी.)	उपकरणों को जोड़ता है और पर्यावरणीय कारकों की वास्तविक समय में निगरानी और स्वचालन सुनिश्चित करता है, जिससे सटीक नियंत्रण और संसाधन दक्षता मिलती है।
4.	रोबोटिक्स	बुआई, छंटाई, कटाई जैसे कार्य सटीकता के साथ करने में मदद करता है।
5.	सटीक खेती तकनीकें	पर्यावरणीय कारकों को वास्तविक समय में समायोजित करके अधिकतम उपज सुनिश्चित करती हैं।
6.	डेटा विश्लेषण	पौधों की सेहत की स्थिति में अंतदृष्टि प्रदान करता है।
7.	दूरस्थ निगरानी प्रणालियां	फसल वृद्धि के मापदंडों की दूर से निगरानी की सुविधा प्रदान करती हैं।
8.	इंडोर जलवायु नियंत्रण	वेंटिलेशन सिस्टम या कृत्रिम प्रकाश का उपयोग करके आदर्श बढ़ने की स्थिति बनाए रखते हैं।

इन तकनीकों का एकीकरण किसानों को वास्तविक समय में जानकारी प्रदान करता है, जिससे वे पर्यावरणीय कारकों को समायोजित कर सकते हैं ताकि फसल की गुणवत्ता और उपज अधिकतम हो सके।

विकास माध्यम

ऊर्ध्वाधर खेती में पारंपरिक मिट्टी की जगह मृदारहित उत्पादन की प्रणालियां होती हैं। बिना मिट्टी के खेती की तीन प्रमुख विधियां हैं:

- **हाइड्रोपोनिक्स:** इस प्रणाली में, पौधे पोषक तत्वों से समृद्ध जल घोल में उगते हैं, जो मिट्टी की आवश्यकता को समाप्त कर देता है। हाइड्रोपोनिक प्रणालियों में सामान्य उपकरणों में पोषक तत्व फिल्म तकनीक, डीप वॉटर कल्चर टैंक और एरोपोनिक टॉवर शामिल हैं।
- **एरोपोनिक्स:** इस प्रणाली में पौधे हवा में निलंबित होते हैं और उनकी जड़ें पोषक तत्वों से संतृप्त धुएं में डूबी रहती हैं। इस प्रणाली में मिस्ट नोजल और पौधे की जड़ की निगरानी प्रणाली जैसे उपकरणों का उपयोग किया जाता है।
- **एक्वापोनिक्स:** यह हाइड्रोपोनिक्स और एक्वाकल्चर का संयोजन है, जिसमें मछलियां और पौधे एक सहजीवी

आधुनिक प्रणाली

ऊर्ध्वाधर खेती भारत में शहरीकरण, जलवायु परिवर्तन और सीमित खेती योग्य भूमि की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है। हाइड्रोपोनिक्स, एरोपोनिक्स, ए.आई., आई.ओ.टी. और नवीकरणीय ऊर्जा जैसे तकनीकी समाधानों का लाभ उठाकर, यह खेती संसाधनों का अधिकतम उपयोग करने, पानी की खपत को कम करने और सतत खाद्य उत्पादन को बढ़ावा देने में मदद करती है। हालांकि, उच्च प्रारंभिक लागत और तकनीकी जटिलताओं जैसे कुछ मुद्दे मौजूद हैं, फिर भी निरंतर प्रगति और बढ़ती स्वीकृति के साथ, ऊर्ध्वाधर खेती भारत की बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्य सुरक्षा और पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

वातावरण में उगते हैं। इस प्रणाली में बायोफिल्टर जैसे उपकरणों का उपयोग किया जाता है, ताकि पानी को फिल्टर किया जा सके।

हाइड्रोपोनिक और एरोपोनिक प्रणालियां भारत में जल संरक्षण और सीमित स्थानों में उपयुक्तता के कारण अधिक प्रचलित हैं।

जलवायु नियंत्रण और पर्यावरणीय प्रणालियां

ऊर्ध्वाधर खेती में पौधों की वृद्धि के लिए पर्यावरण का सटीक नियंत्रण आवश्यक है। इसमें तापमान, आर्द्रता, वायु गुणवत्ता और कार्बन डाइऑक्साइड स्तरों को नियंत्रित किया जाता है। स्वचालित जलवायु नियंत्रण प्रणालियां इन तत्वों को संतुलित रखकर मानव हस्तक्षेप को कम करती हैं और फसल उत्पादन में स्थिरता सुनिश्चित करती हैं:

- **तापमान नियंत्रण:** तापन, संवातन और वातानुकूलन (एचवीएसी) जैसी प्रणालियां तापमान की स्थिरता सुनिश्चित करती हैं। तापमान सेंसर वातावरण की निगरानी करते हैं और आवश्यक होने पर स्वचालित रूप से समायोजन करते हैं।
- **आर्द्रता नियंत्रण:** आर्द्रता सेंसर आदर्श स्तर (सामान्यत: 50-60 प्रतिशत आर्द्रता) बनाए रखते हैं, जो रोगों को रोकने और पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।
- **कार्बन डाइऑक्साइड नियंत्रण:** कार्बन डाइऑक्साइड स्तरों की निगरानी कार्बन डाइऑक्साइड सेंसर द्वारा की जाती है, ताकि प्रभावी प्रकाश संश्लेषण सुनिश्चित किया जा सके। कुछ प्रणालियों में, अतिरिक्त कार्बन डाइऑक्साइड को पर्यावरण में इंजेक्ट किया जा सकता है, ताकि पौधों की वृद्धि को बढ़ावा मिले।
- **वायु प्रवाह प्रबंधन:** ऊर्ध्वाधर खेती में पंखे और वायु शोधक प्रणालियों का उपयोग किया जाता है, ताकि हवा का निरंतर प्रवाह सुनिश्चित हो सके और अतिरिक्त आर्द्रता का संचय रोका जा सके, जिससे मोल्ड या फफूंदी का विकास हो सकता है।

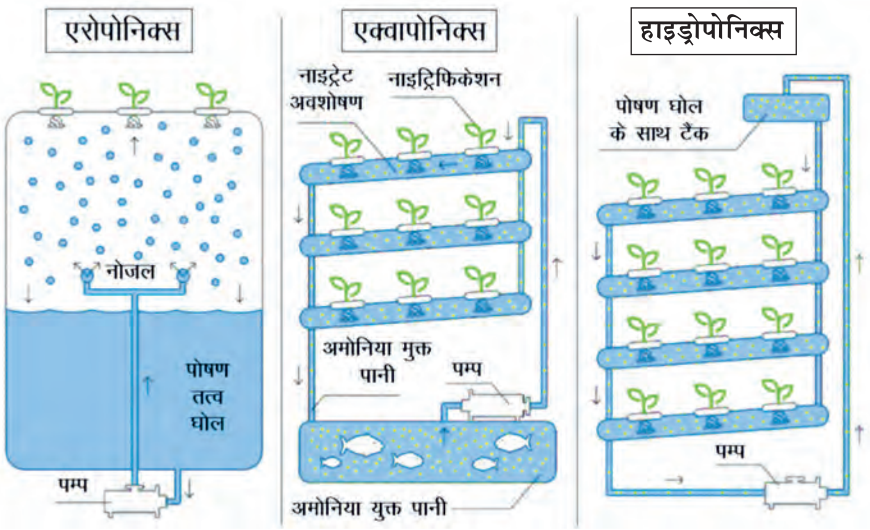

ऊर्ध्वाधर खेती में विभिन्न प्रकार के विकास माध्यम

जल पुनर्चक्रण और प्रबंधन

भारत में जल की कमी को देखते हुए, ऊर्ध्वाधर खेती में मुख्यत: ड्रिप सिंचाई और हाइड्रोपोनिक्स जैसी जल-कुशल तकनीकों का उपयोग किया जाता है, जिससे जल की खपत कम होती है। इन प्रणालियों से जल का कुशल उपयोग, स्थिरता और अपशिष्ट में कमी सुनिश्चित होती है।

- **पुन: चक्रीय जल प्रणालियां:** अधिकांश ऊर्ध्वाधर खेती प्रणालियां पुन: चक्रीय जल प्रणालियों का उपयोग करती हैं, जहां सिंचाई के बाद पानी एकत्रित करके पुन: उपयोग किया जाता है। इससे जल का अपव्यय कम होता है और पौधों को निरंतर जल मिलता है। जल गुणवत्ता सेंसर पी-एच, विद्युत चालकता और घुलित ऑक्सीजन जैसे मापदंडों की निगरानी करते रहते हैं, ताकि इष्टतम स्थितियां सुनिश्चित की जा सकें।
- **वर्षा जल संचयन:** कुछ ऊर्ध्वाधर खेती प्रणालियां अपनी जल आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वर्षा जल संचयन प्रणालियों का उपयोग करती हैं। एकत्रित वर्षा जल को साफ करके स्टोर टैंकों में संचित किया जाता है, जो अतिरिक्त जल स्रोत प्रदान करता है।
- **स्वचालित सिंचाई:** नमी सेंसर की मदद से पानी की सही मात्रा और समय सुनिश्चित किया जाता है। इससे पानी का अपव्यय कम होता है और जल की कुशलता बढ़ती है।

पोषक तत्व आपूर्ति प्रणालियां

ऊर्ध्वाधर खेती में पोषक तत्वों की आपूर्ति का प्रभावी प्रबंधन पौधों की स्वस्थ वृद्धि के लिए आवश्यक है। इसके लिए मुख्य रूप से हाइड्रोपोनिक्स और एरोपोनिक्स प्रणालियां उपयोग की जाती हैं। इनमें पंप और पी-एच नियंत्रक होते हैं, जो पौधों को सही पोषक घोल प्रदान करते हैं। ये प्रणालियां विद्युत चालकता और पी-एच सेंसर का उपयोग करके पोषक तत्वों के स्तर की निगरानी करती हैं और उन्हें वास्तविक समय में समायोजित करती हैं।

ऊर्ध्वाधर खेती में स्वचालन प्रौद्योगिकी

स्वचालन बीज बोने और फसल काटने जैसे श्रम-गहन कार्यों को रोबोटिक सटीकता से सरल बनाता है। यह मानव त्रुटियों को घटाता है, उत्पादकता बढ़ाता है और संसाधनों के कुशल उपयोग से अधिक फसल उपज प्राप्त होती है। खेती की विभिन्न प्रक्रियाओं को स्वचालित करने के लिए कई उपकरण और तकनीकों का उपयोग किया जाता है:

- **रोबोटिक फसल कटाई:** कुछ ऊर्ध्वाधर खेती प्रणालियों में, रोबोटिक हाथ या ड्रोन का उपयोग फसल कटाई प्रक्रिया को स्वचालित करने के लिए किया जाता है। इससे श्रम की आवश्यकता कम होती है और गुणवत्ता में स्थिरता बनी रहती है। रोबोट का उपयोग अन्य कार्यों जैसे कि छंटाई, बुआई और बीजाणु प्रत्यारोपण में भी किया जा सकता है।
- **कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई):** एआई-समर्थित प्रणालियां पर्यावरणीय कारकों को समायोजित करने के लिए सेंसर डेटा का उपयोग करती हैं और फसल वृद्धि पैटर्न की भविष्यवाणी, कटाई का

समय अनुकूलित, तथा कीट संक्रमण या रोगों को पहचानने में मदद करती हैं। एआई उपकरण जैसे पौधों में रोगों का पता लगाने वाला सॉफ्टवेयर और मशीन लर्निंग मॉडल किसानों को समस्याओं का जल्दी पता लगाने में मदद करते हैं, जिससे फसल नुकसान कम किया जा सकता है।

- **इंटरनेट ऑफ थिंग्स (आई.ओ.टी.):** ऊर्ध्वाधर खेती में आई.ओ.टी. तकनीक पर्यावरणीय कारकों की निगरानी और नियंत्रण में मदद करती है, जैसे तापमान, आर्द्रता और पोषक तत्वों का स्तर। यह स्वचालित सिंचाई और ऊर्जा प्रबंधन को प्रभावी बनाता है, जिससे संसाधनों का कुशल उपयोग होता है और फसल उत्पादन बढ़ता है।

प्रकाश प्रणाली

ऊर्ध्वाधर खेती में कृत्रिम प्रकाश, विशेषकर एलईडी, महत्वपूर्ण होता है। प्राकृतिक धूप अपर्याप्त होती है। एलईडी ऊर्जा बचाता है, लंबी उम्र प्रदान करता है और पौधों की वृद्धि के लिए उपयुक्त प्रकाश श्रृंखला को उत्सर्जित करता है। जबकि स्मार्ट नियंत्रक प्रकाश की तीव्रता को समायोजित करते हैं। सौर पैनलों के साथ इसका एकीकरण ऊर्जा खपत को कम करता है।

- **संपूर्ण श्रृंखला एलईडी:** यह एलईडी प्रणाली प्राकृतिक सूरज की रोशनी की नकल करती है। पौधों की स्वस्थ वृद्धि के लिए लाल, नीले और हरे प्रकाश का संतुलन प्रदान करती है।
- **समायोज्य स्पेक्ट्रम एलईडी:** यह एलईडी प्रकाश की तीव्रता और तरंग दैर्ध्य को अनुकूलित करने के लिए उपयोग की जाती है, जो पौधों की वृद्धि के विभिन्न चरणों (जैसे कि हरी पत्तियों की वृद्धि के लिए नीला प्रकाश और फूलों के लिए लाल प्रकाश) पर निर्भर करती है।

ऊर्ध्वाधर खेती में प्रयोग होने वाले सेंसर और एक्ट्यूएटर्स

- **सेंसर और एक्ट्यूएटर्स:** सेंसर वे उपकरण होते हैं, जो भौतिक गुणों जैसे-तापमान, दबाव या गति का पता लगाते हैं और उन्हें विद्युत संकेतों में परिवर्तित करते हैं, जबकि एक्ट्यूएटर्स वे उपकरण होते हैं, जो विद्युत संकेतों को भौतिक क्रियाओं जैसे गति या बल में परिवर्तित करते हैं।
- सेंसर मापदंडों का निरीक्षण करते हैं और एक्ट्यूएटर्स सटीक संचालन को सक्रिय करते हैं, जिससे निरंतर मानवीय हस्तक्षेप की आवश्यकता कम हो जाती है। तापमान, आर्द्रता और प्रकाश तीव्रता सेंसर वास्तविक समय में पर्यावरण की निगरानी करते हैं, जबकि कार्बन डाइऑक्साइड और जल स्तर सेंसर सामग्री एवं संसाधनों का प्रबंधन करते हैं।
- विद्युत चालकता और पी-एच सेंसर पोषक तत्वों और पी-एच स्तर को मापते हैं। एक्ट्यूएटर्स में हीटर-कूलर, ह्यूमिडिफायर-डिह्यूमिडिफायर वातावरण के तापमान और आर्द्रता स्तर के नियंत्रण के लिए, एलईडी आवश्यक प्रकाश तीव्रता के लिए, पंखा और पोषक तत्व पंप शामिल होते हैं। ये पर्यावरण को संतुलित रखते हैं और पौधों के विकास में सहायक होते हैं।
- **ब्लॉकचेन:** खाद्य आपूर्ति श्रृंखला में पारदर्शिता बढ़ाने के लिए ब्लॉकचेन का उपयोग किया जा रहा है, जिससे फसलों की ट्रेसिबिलिटी सुनिश्चित होती है। यह उपभोक्ताओं को ऊर्ध्वाधर खेती से प्राप्त उत्पादों की सुरक्षा और स्थिरता के बारे में विश्वास प्रदान करता है।
- **नवीकरणीय ऊर्जा का एकीकरण:** सौर ऊर्जा का उपयोग ऊर्ध्वाधर फार्मों की संचालन लागत को घटाने और कार्बन फुटप्रिंट को कम करने में मदद करता है। कुछ फार्म पवन ऊर्जा का भी उपयोग कर रहे हैं, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहां बिजली की आपूर्ति अस्थिर होती है।

ऊर्ध्वाधर खेती के लाभ

- प्रतिकूल मौसम स्थितियों से अप्रभावित और वर्षभर फसल उत्पादन।
- जल और ऊर्जा का 90 प्रतिशत तक कम उपयोग।
- शहरी खाद्य उत्पादन का समर्थन करता है, ग्रामीण निर्भरता को कम करता है।
- जैविक फसलों की वृद्धि को सक्षम करता है।

चुनौतियां

- बुनियादी ढांचे के लिए उच्च प्रारंभिक निवेश।
- प्रकाश और जलवायु नियंत्रण के लिए ऊर्जा की अधिक खपत।
- भारत में अनुसंधान और ज्ञान प्रसार की सीमित उपलब्धता।

कृषि उपकरणों से उत्पादकता में सुधार

राजीव कुमार[1], आदर्श कुमार[1] और **एच.एल. कुशवाह[2]**

"वर्तमान में प्रत्येक काम की क्षमता और कुशलता के लिए मशीन और उपकरणों का उपयोग महत्वपूर्ण हो गया है। कृषि में अनाज के उत्पादन के लिए पौधों/बीजों को बोने से फसल कटाई तक बहुत श्रम और लागत की आवश्यकता होती है। मृदा, पानी, बीज, खाद, कीटनाशक और मानव श्रम जैसी सभी उपयोगी सामग्री को सही समय पर, उन्नत प्रकार से और उचित मात्रा में उपयोग करने के लिए अब कृषि उपकरण अनिवार्य हो गए हैं। इन सभी कार्यों को मशीनों की सहायता से पूर्ण करना 'कृषि यांत्रिकीकरण' कहलाता है। कृषि कार्यों को पूरा करने के लिए मानव श्रम/उपकरण की आवश्यकता होती है, जैसे कि मृदा को बीज/पौधों द्वारा अनुकूल वातावरण तैयार करना, बीजों की सही समय पर बोना और सही समय पर और सही मात्रा में सिंचाई करना। इन सभी कार्यों को कृषि उपकरण द्वारा करने से लागत में कमी और समय की बचत होती है। भावी परिदृश्य देखते हुए यह अनुमान है कि कृषि यांत्रिकीकरण का उपयोग 40-50 प्रतिशत से बढ़कर 75 प्रतिशत तक हो जाएगा। शारीरिक श्रम पर निर्भरता को कम करके कृषि की कुशलता और उत्पादकता में सुधार, कृषि यांत्रिकीकरण से ही संभव है।"

यंत्रों का उपयोग करने से कार्यक्षमता में वृद्धि होती है, अच्छे कृषि यंत्रों की सहायता से कम समय में अधिक कार्य किया जा सकता है और शारीरिक श्रम की आवश्यकता कम होती है। कार्य की गुणवत्ता भी बेहतर होती है। उदाहरण के लिए, खुरपी की बजाय कसोला का उपयोग करने से कार्यक्षमता में वृद्धि होती है, गुणवत्ता में सुधार होता है और मानव शरीर पर नकारात्मक प्रभाव कम होता है। लेजर लेवलर का उपयोग करके खेत को समतल करने से पानी की खपत में कमी होती है जबकि मानव द्वारा समतल किया गया खेत इतना सटीक और त्रुटिहीन नहीं होता है। सीडड्रिल द्वारा बुआई करने से बीज की मात्रा और मजदूरी में कमी होती है और फसल प्रबंधन के अन्य कार्य जैसे निराई-गुड़ाई करना आसान हो जाता है, जो मानव द्वारा बुआई करने में अत्यधिक कठिन होता है।

[1]कृषि अभियांत्रिकी संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली; [2]भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

कीटनाशक/खरपतवारनाशकों का छिड़काव

कृषि विकास की दिशा में तकनीकी उन्नति ने अद्‌भुत परिणाम दिए हैं। यंत्रों का उपयोग कृषि के विभिन्न क्षेत्रों में किया जा रहा है, जिसमें दवाई छिड़काव एक महत्वपूर्ण योगदान है। मानव श्रम की तुलना में यंत्र का उपयोग करके कीटनाशक छिड़कने से दवाई की मात्रा कम लगती है। यह कृषि उत्पादन की वृद्धि के साथ-साथ पर्यावरण को भी प्रदूषित नहीं करता है।

यंत्रों के उपयोग से एकस्वरूप छिड़काव होता है, जिससे फसलों पर दवाई का प्रभावी प्रमाण होता है और उसका अधिक समय तक प्रभाव बना रहता है। इसके साथ ही, यंत्रों

का प्रयोग करने वाले व्यक्ति के स्वास्थ्य पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव नहीं होता है। कम दवाई के प्रयोग की वजह से लागत में कमी आती है और इससे किसानों को उत्पादकता बढ़ाने में मदद मिलती है। इसके अलावा, यंत्रों का प्रयोग करने से वातावरण पर भी दुष्प्रभाव कम पड़ता है। दवाई की कम मात्रा के कारण उत्पादित अपशिष्ट भी कम होता है। कम दवाई के प्रयोग से मृदा का स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है, जिससे फसलों का प्रभावी उत्पादन होता है और मृदा को उपजाऊपन भी बना रहता है।

आजकल, वेरिएबल रेट फर्टिलाइजर यंत्रों के प्रयोग से खाद और दवाई का छिड़काव समयानुकूल और प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। यह वास्तव में एक क्रांतिकारी प्रक्रिया है, जो कृषि उत्पादन को बढ़ावा देती है और मानव श्रम के खर्च में कमी लाती है। कृषि यंत्रों के उपयोग से न केवल किसानों को लाभ मिलता है, बल्कि पर्यावरण और सामाजिक असमानता पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसके फायदे अधिक होते हैं और इसलिए इस तकनीक का अधिक प्रयोग करना चाहिए, ताकि परंपरागत कृषि पद्धतियों में यांत्रिकीकरण के प्रयोग से उन्नत और सुरक्षित उत्पादन प्रक्रियाओं की ओर बढ़ सकें।

आधुनिकतम यंत्रों और तकनीकों का प्रभाव

कृषि कार्य में आजकल रोबोटिक्स, ड्रोन, आईओटी आधारित यंत्रों का प्रयोग बढ़ रहा है। इससे कृषि कार्य को और भी कुशल तरीके से करना संभव हो रहा है। इससे लागत में कमी, उत्पादकता एवं उत्पादन में वृद्धि हो रही है।

ड्रोन के उपयोग

हाल के वर्षों में कृषि क्षेत्र में ड्रोन तकनीक भी लोकप्रिय हो रही है। ड्रोन के प्रयोग से किसानों को कई लाभ हैं, जैसे-उच्च पैदावार, कम लागत और दक्षता में वृद्धि। कृषि क्षेत्र में, ड्रोन का उपयोग विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है जैसे-कीट नियंत्रण, फसल मानचित्रण, मृदा विश्लेषण आदि। ड्रोन की क्षमता के कारण, कम समय में अधिक क्षेत्र की तेजी से और कुशलतापूर्वक दूरी तय करने से किसान कम समय में अधिक डेटा (आंकड़े) एकत्र कर सकते हैं और फसलों पर कड़ी नजर रख सकते हैं। किसी भी प्रकार की समस्या का शीघ्र पता लगाने से त्वरित और अधिक कुशल प्रतिक्रियाएं की जा सकती हैं। किसान फसल स्वास्थ्य पर आंकड़े की जानकारी एकत्र करने के लिए ड्रोन का उपयोग करके उन क्षेत्रों की खोज कर सकते हैं, जिन्हें देखभाल की अधिक आवश्यकता है। किसान इन समस्याओं का समाधान करके कृषि पैदावार और लाभ बढ़ा सकते हैं। रखरखाव की आवश्यकता वाले कृषि क्षेत्रों का पता लगाकर, शारीरिक श्रम की कमी होती है। कीटनाशकों और अन्य रसायनों के उपयोग को कम करके, खर्च में कमी आती है। ड्रोन की उच्च-रिजॉल्यूशन और गहन तस्वीरें तथा आंकड़े लेने की क्षमता के कारण किसान अपनी फसलों की पूरी तस्वीर देख सकते हैं। इससे समय पर समस्या का उपयुक्त समाधान किया जा सकता है।

कृषि रोबोट

कृषि में रोबोटिक्स का उपयोग

कृषि में रोबोटिक्स का प्रयोग पारंपरिक कृषि पद्धतियों में क्रांति लाने की अपार संभावनाएं प्रदान करता है और खेती की लागत को कम करने में महत्वपूर्ण रूप से उभर रहा है। इससे वह कम समय में अधिक कुशल, लागत प्रभावी और टिकाऊ बन जाती है। इन प्रौद्योगिकियों को अपनाकर, किसान खेती की कुल लागत को कम करते हुए उच्च उत्पादकता और लाभप्रदता प्राप्त कर सकते हैं। विभिन्न कृषि प्रक्रियाओं में रोबोटिक्स द्वारा दक्षता बढ़ाई जाती है, श्रम लागत कम की जाती है और फसल की पैदावार को अनुकूलित

कृषि यांत्रिकीकरण को प्रोत्साहन

भारत सरकार, कृषि यांत्रिकीकरण को प्रोत्साहित करने के लिए कई योजनाएं चला रही है। कृषि मशीनीकरण पर उप-मिशन इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए काम कर रहा है। इसके माध्यम से अधिक उत्पादकता को बढ़ाया जा रहा है, ताकि बढ़ती जनसंख्या की खाद्य संसाधनों की मांग को पूरा किया जा सके। इसके साथ ही योजना का लक्ष्य छोटे और सीमांत किसानों के लिए कृषि मशीनीकरण की पहुंच को बढ़ाना है। इसके अलावा, 'कस्टम हॉयरिंग केंद्र' की स्थापना के माध्यम से उच्च तकनीक और गहन लागत वाले कृषि उपकरणों की पहुंच को बढ़ाया जा रहा है। इस योजना के माध्यम से कृषि परीक्षण केंद्रों की स्थापना भी की जा रही है ताकि कृषि उत्पादकों को उनके यंत्रों के उपयोग के लिए जागरूक किया जा सके।

किया जा सकता है। इसे दर्शाने वाले निम्न प्रमुख बिंदु हैं:

स्वचालित संचालन

रोबोट रोपण, निराई और कटाई जैसे बार-बार करने वाले कार्यों को सटीकता और स्थिरता के साथ कर सकते हैं। इससे शारीरिक श्रम पर निर्भरता कम हो जाती है, जिसका लागत में बड़ा हिस्सा होता है और अक्सर उपलब्धता संबंधी समस्याओं का विषय हो सकता है।

अविराम कार्य करने की क्षमता

मानव श्रमिकों के विपरीत, रोबोट बिना थकान या रुकावट के 24 घंटे काम कर सकते हैं। इनका निरंतर संचालन उत्पादकता को बढ़ाता है और किसानों को अपनी कृषि परिसंपत्तियों से अधिकतम लाभ उठाने की संभावना को बनाता है।

कृषि ड्रोन

डेटा आधारित संचालित निर्णय लेना

कृषि में रोबोटिक्स फसल स्वास्थ्य, मृदा की गुणवत्ता, मौसम के बदलाव आदि से संबंधित बड़ी मात्रा में डेटा उत्पन्न करता है। ए.आई. का उपयोग करके इस डेटा का विश्लेषण करने से किसानों को अति शीघ्र निर्णय लेने में मदद मिलती है, जिससे बेहतर संसाधन आवंटन और कम लागत पर अधिक पैदावार होती है।

अनुकूलित संसाधन प्रबंधन

सेंसर और ए.आई. से लैस रोबोट वास्तविक समय के डेटा के आधार पर केवल आवश्यकतानुसार उर्वरक और कीटनाशक जैसे इनपुट को सटीक तरीके से प्रबंधित करता है। यह न केवल इन आदानों के समग्र उपयोग को कम करता है, बल्कि पर्यावरण प्रदूषण को भी रोकता है और लागत को कम करता है।

सटीक खेती

रोबोटिक्स फसल स्वास्थ्य प्रबंधन, मृदा की गुणवत्ता स्थिति और सिंचाई की आवश्यकताओं की सटीक निगरानी और फसल प्रबंधन करके सटीक खेती तकनीकों को सक्षम बनाता है। यह लक्षित बिंदु संसाधन के अपव्यय को कम करता है और पानी, उर्वरक और कीटनाशकों जैसी उत्पादन साम्रगी की कुल लागत को कम करता है।

आई.ओ.टी. का उपयोग

आई.ओ.टी. आधारित स्मार्ट खेती में, प्रकाश, आर्द्रता, तापमान और मृदा की नमी जैसे सेंसर का उपयोग करके फसल क्षेत्र की निगरानी की जाती है। सिंचाई प्रणाली को स्वचालित किया जा सकता है। इस तकनीक से किसान कहीं से भी खेत की स्थिति का पता लगा सकते हैं। पारंपरिक दृष्टिकोण की तुलना में आई.ओ.टी.-आधारित स्मार्ट खेती अत्यधिक कुशल है। आई.ओ.टी.-आधारित तकनीक का उपयोग कर ग्रीनहाउस का स्वचालन, पूर्वानुमानित मौसम में बदलाव, मृदा की नमी की मात्रा और फसल स्वास्थ्य का विश्लेषण, कीट नियंत्रण, फार्म प्रबंधन, जियोफेंसिंग और पशुधन ट्रैकिंग कार्य भी किया जा सकता है। यह मानव तकनीक संचालित व्यवस्था से कहीं ज्यादा सटीक और गुणवत्तापूर्ण है। इससे मानव श्रम पर लागत में बहुत कमी आती है, कार्य कुशलता बढ़ती है और कुल लागत में कमी आने से किसान का लाभ बढ़ जाता है। समय का उपयोग बहुत महत्वपूर्ण है। समय ही संपदा है, खेती में यह बात बिल्कुल सटीक है। समय पर बीज की बुआई, खरपतवार का निकालना, दवाई का छिड़काव, समय पर कटाई, इन सबसे पैदावार में वृद्धि और गुणवत्ता को सुनिश्चित किया जा सकता है। अच्छी गुणवत्ता वाली पैदावार से आय में वृद्धि हो सकती है और लागत में कमी होती है। यह सभी कृषि यंत्रों के उपयोग से ही संभव है। इससे समय की बचत होती है और बचा हुआ समय किसी अन्य कार्य में उपयोग किया जा सकता है, जिससे आय में वृद्धि हो सकती है।

श्रम बचत

रोबोटिक्स के कार्यान्वयन से, किसान शारीरिक श्रम पर अपनी निर्भरता को काफी हद तक कम कर सकते हैं। यह अक्सर कृषि में सबसे अधिक लागतों में से एक है। इसके परिणामस्वरूप श्रम व्यय में पर्याप्त बचत होती है, जिससे खेती का कार्य आर्थिक रूप से अधिक व्यवहार्य हो जाता है। किसान, बचे हुए समय को और कार्यों में इस्तेमाल कर आमदनी में इजाफा कर सकते हैं।

अनुकूलन

रोबोटिक्स समाधानों को खेत की विशिष्ट आवश्यकताओं और आकार के अनुसार अनुकूलित और अनुपातित किया जा सकता है। चाहे वह एक छोटा परिवार-स्वामित्व वाला खेत हो या एक बड़ा व्यावसायिक संचालन, रोबोटिक्स की दक्षता को अनुकूलित करने और तदनुसार लागत कम करने के लिए तैयार किया जा सकता है।

आज के समय में कृषि श्रमिकों की कमी देखी जाती है। आवश्यकता के समय कार्य करने वाले व्यक्तियों की अनुपलब्धता से किसान को नुकसान उठाना पड़ता है। इसे कृषि यंत्रों द्वारा काफी हद तक कम किया जा

सकता है। अच्छे यंत्रों के उपयोग से किसान आधुनिक और वैज्ञानिक पक्ष से जुड़ते हैं और वैज्ञानिकों से संपर्क स्थापित कर लेते हैं। इससे किसानों को नए उपकरणों के इस्तेमाल करने का संकोच समाप्त हो जाता है और तकनीकी कौशल को बढ़ावा मिलता है। यह युवा वर्ग में आय और व्यवसाय का अच्छा माध्यम बन सकता है।

युवा और यांत्रिकीकरण

यांत्रिकीकरण युवाओं को कृषि के कार्यो में आकर्षित करता है और बड़ी उम्र के व्यक्तियों की शारीरिक क्षमता में कमी में सहायता प्रदान करता है। इससे लागत में कमी, समय पर काम और उत्पादन में वृद्धि होती है। यह सिर्फ अपने खेत में काम करने के लिए ही नहीं है, बल्कि दूसरों के खेतों में काम करने का भी माध्यम बनता है और किसानों की कुशलता दूसरों को व्यवसाय देने में मदद करती है।

यांत्रिकीकरण से प्रेसीजन एग्रीकल्चर (सटीक कृषि) के पांच सिद्धांत हैं:

- सही समय
- सही मात्रा
- सही स्थान
- सही इनपुट
- सही तरीके का पालन

ये सभी सिद्धांत केवल यंत्रों के प्रयोग से ही संभव हैं और इसके विभिन्न लाभ हैं:

- फसल की वृद्धि में समानता होती है
- हॉयर क्रॉपिंग इंटेंसिटी प्रतिशत (भूमि में अधिक फसलें)
- विविधता (विभिन्न फसलों में) के उपयोग से फसलों की बुआई संभव
- वातावरणीय परिवर्तनों के समाधान में सहायक
- उत्कृष्ट मशीनों के लिए कौशल की आवश्यकता, जो युवाओं के लिए आय के आयाम को बढ़ाती हैं

आई.ओ.टी. का प्रयोग

- कस्टम हॉयरिंग की सुविधा प्रदान करने के लिए भी रोजगार में सहायक
- कृषि में उपयोग होने वाली सामग्री का सदुपयोग, जो लागत में कमी करता है

कृषि यांत्रिकीकरण और लागत

कृषि, जो हमारे देश की अर्थव्यवस्था और आर्थिक उन्नति का मूल आधार है, उसके विकास में यांत्रिकीकरण का महत्वपूर्ण योगदान है। यांत्रिकीकरण के लिए लागत को दो भागों में बांटा गया है–प्रत्यक्ष मूल्य और अप्रत्यक्ष मूल्य। प्रत्यक्ष मूल्य वे ऊर्जा स्रोत हैं, जो कृषि कार्यों को सीधे संचालित करते हैं, जैस–ईंधन, डीजल, कृषि मशीनरी, मानव श्रम और बिजली आदि।

अप्रत्यक्ष मूल्य ऊर्जा स्रोत हैं, जो कृषि के विभिन्न प्रक्रियाओं में उपयोग होते हैं, जैसे–बीज, खाद, फसल अवशेष, रासायनिक उर्वरक, जैव उर्वरक और कीटनाशक आदि।

प्रत्यक्ष ऊर्जा स्रोत जैसे–पशु, सौर, वायु और जल को नष्ट नहीं किया जा सकता और इसे पुन: प्राप्त किया जा सकता है, इसलिए इसे प्रत्यक्ष नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों के रूप में वर्गीकृत किया गया है। वहीं डीजल और बिजली ऐसे ऊर्जा स्रोत हैं, जो एक बार उपयोग के बाद समाप्त हो जाते हैं, इसलिए इन्हें प्रत्यक्ष गैर–नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

इसी तरह, अप्रत्यक्ष ऊर्जा स्रोत, बायोमास और खाद जैसे स्रोतों को उचित समय पर पुन: प्राप्त किया जा सकता है, इसलिए इसे अप्रत्यक्ष नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों के रूप में वर्गीकृत किया गया है। जबकि उर्वरक, रसायन और मशीनरी की पूर्ति नहीं होती, इसलिए इसे अप्रत्यक्ष गैर–नवीकरणीय के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है। इन सभी प्रत्यक्ष लागतों का उपयोग अधिक कुशल तरीके से करना चाहिए और इसकी क्षति को कम से कम होना चाहिए। यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि कृषि के लिए यांत्रिकीकरण का उपयोग केवल उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए ही नहीं, बल्कि लागतों की कमी और समय की बचत के लिए भी होना चाहिए।

कृषि यांत्रिकीकरण का स्तर 75 प्रतिशत तक लेकर जाने के लिए सभी उपरोक्त कृषि कार्यों में मशीनों के इस्तेमाल की अत्यधिक संभावनाएं हैं। इनसे कृषक की लागत कम होगी, पैदावार तथा उपज की गुणवत्ता बढ़ेगी। फसलों का मूल्य ज्यादा मिलेगा तथा मुनाफा बढ़ सकता है। इसके अतिरिक्त तकनीकी ज्ञान तथा व्यवसाय के साधनों में तेजी आएगी। युवा वर्ग इससे बहु विकास की तरफ अग्रसर हो सकता है।

सारणी: फसलों में विभिन्न कृषि कार्यों में यांत्रिकीकरण का स्तर (प्रतिशत)

फसल	कृषि कार्य में यांत्रिकीकरण का स्तर (प्रतिशत)				
यांत्रिकीकरण	भूमि की तैयारी	बुआई	निराई	फसल कटाई और गहाई	कुल मिलाकर
धान	70	20	30	60	53
गेहूं	70	60	50	70	69
मक्का	60	40	30	30	46
ज्वार और श्रीअन्न	50	30	15	10	33
दाल	50	40	20	25	41
तिलहन	50	40	20	25	39
कपास	50	30	25	0	39
गन्ना	55	10	20	10	36

श्रीअन्न की कृषि में भूमिका

नीशू जोशी, सौरभ जोशी और **जितेंद्र शर्मा**

"भारत एक प्रमुख श्रीअन्न फसल उत्पादक देश है। श्रीअन्न फसलों में कोदो, कुटकी एवं सांवा भारत में ही सामान्यता उगाए जाते हैं। ये फसलें साधारणतया घास प्रजाति के सी-ग्रुप के पौधे हैं, जो गर्म मौसम में उगते हैं। देश में इनका उत्पादन समुद्र तल से लेकर लगभग 2000 मीटर की ऊंचाई तक होता है। भारत में 21-22 लाख हैक्टर क्षेत्र में श्रीअन्न फसलों का उत्पादन किया जाता है। ये फसलें विभिन्न तरह की जलवायु एवं भूमि में उगाई जाती हैं। इन फसलों का उत्पादन पारंपरिक तरीकों से किया जाता रहा है इसीलिए इनकी उत्पादकता 500 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर से लेकर 1000 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर है। इन फसलों में सबसे अधिक उत्पादकता रागी (1200 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर) की है। श्रीअन्न फसलें आदि काल से विभिन्न तरह के जलवायु प्रक्षेत्रों में सबसे आसानी से उत्पादित होने वाली फसलें रही हैं। सूखे अथवा विपरीत परिस्थितियों में भी इन फसलों से दूसरी अन्य फसलों की तुलना में बेहतर उत्पादन प्राप्त होता है। ये फसलें पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं। इस कारण पिछले एक दशक में इन फसलों की मांग में बढ़ोत्तरी हुई है। इन फसलों में ज्वार एवं बाजरा को प्रमुख फसल एवं अन्य फसलों को लघु अनाज के रूप में परिभाषित किया जाता है। स्वास्थ्य समृद्धि के अलावा श्रीअन्न फसलों का उत्पादन पर्यावरण के लिए भी महत्वपूर्ण है। इन फसलों को रासायनिक खाद की जरूरत कम होती है। श्रीअन्न खाद्य सुरक्षा और कुपोषण को दूर करने में मदद करते हैं। सरकार ने इनके महत्व को समझते हुए इन्हें 'सुपर फूड' के रूप में बढ़ावा दिया है।"

राजस्थान, जिसे अपनी कठोर और आर्द्र मौसम की वजह से जाना जाता है, वहां कृषि क्षेत्र में बाजरे जैसी परंपरागत फसलों के पुनर्जीवन में एक सकारात्मक बदलाव देखने को मिल रहा है। बाजरा, जौ और रागी जैसी छोटी-छोटी बीजों वाले घास के पौधे, राजस्थान की अनियमित वर्षा, गर्मी और कम नमी के तत्वों में अच्छी तरह से उगने के लिए उपयुक्त हैं। ये फसलें जल-संरक्षणीय कृषि के लिए अद्वितीय हैं और वातावरणीय लाभ प्रदान करती हैं।

राजस्थान की जलवायु के लिए बाजरे की उपयुक्तता कई कारणों से है। यहां का तापमान, अनियमित वर्षा, थोड़ी नमी और सूखापन वाली परिस्थितियों में बाजरे का पौधा परिपक्व होता है। यह फसलें कम पानी में उगने के लिए अधिक अनुकूल होती है और बिना रासायनिक उर्वरकों के उपयोग के उपरांत भी उच्च उपज प्राप्त करने के लिए मदद करती है।

बाजरे की खेती राजस्थान में स्थानीय आहार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यहां की जीवंत संस्कृति में बाजरे का महत्वपूर्ण स्थान है। इसे बाजरे की रोटी और खिचड़ी जैसे प्रमुख व्यंजनों में शामिल किया जाता है। बाजरा पोषक

असिस्टेंट प्रोफेसर, कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर

तत्वों में समृद्ध होता है, जैसे कि फाइबर, प्रोटीन और आवश्यक खनिज आदि। इसकी खेती संसाधन संरक्षण और परंपरागत कृषि प्रथाओं को बनाए रखने में मदद करती है। बावजूद इसकी उत्पादकता के राजस्थान में बाजरे की खेती को अनियमित वर्षा और बाजार तक पहुंच जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। लेकिन किसानों और शोधकर्ताओं द्वारा नवाचारिक समाधान जांचे जा रहे हैं। बाजरे को दलहन या तिलहन जैसी फसलों के साथ संयोजित करती कृषि प्रणाली तकनीकें, मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाती हैं और आय स्रोतों को विविध करती हैं। इसके अलावा, जैविक खेती और बाजरे के प्रसंस्करित उत्पादों के माध्यम से मूल्य संवर्धन की पहलें व्यापकता में बढ़ रही हैं। ये पहले नए बाजार बनाती हैं और किसानों की आय को बढ़ाती हैं।

ज्वार

पोषण से भरपूर

श्रीअन्न में पोषण मान गेहूं तथा धान से भी अधिक बेहतर हैं। जैसे कि इन अनाजों में पाया जाने वाला प्रोटीन धान में पाए जाने वाले प्रोटीन की तुलना में बेहतर गुणवत्ता वाला होता है। इन अनाजों में आवश्यक अमीनो अम्ल की गुणवत्ता गेहूं एवं मक्का की तुलना में कहीं अधिक होती है। इन अनाजों में प्रमुख विटामिन जैसे-थायमिन, राइबोफ्लेविन, फोलिक अम्ल तथा नियासिन आदि अच्छी मात्रा में पाये जाते हैं। इन अनाजों के अर्न्तगत रागी कैल्शियम का उच्चतम स्रोत है। श्रीअन्न फसलें फॉस्फोरस तथा लौह तत्व का भी अच्छा स्रोत हैं। लस (ग्लूटिन) गेहूं में पाया जाने वाला एक संरचनात्मक प्रोटीन है। लस की उपस्थिति गेहूं के आटे को लोचदार बनाती है। कुछ लोगों का शरीर इस प्रोटीन को पचा नही पाता तथा सिलिएक रोग से ग्रसित हो जाता है। इस रोग में छोटी आंत में सूजन आ जाने से लौह तत्व, फोलिक एसिड, कैल्शियम, नियासिन तथा वसा में घुलनशील विटामिन सहित कई महत्वपूर्ण पोषक तत्वों का अवशोषण नहीं हो पाता है। रोग के होने की आशंका 3345 व्यक्तियों में से किसी एक व्यक्ति को होती है। ऐसे लोगों के लिए जीवनभर लसमुक्त आहार अपनाने का एकमात्र विकल्प है। श्रीअन्न को दैनिक आहार में शामिल करना उपयोगी है। इन अनाजों में लस नही पाया जाता है इसलिए लस असहिष्णु लोगों के लिए श्रीअन्न सबसे उपयुक्त होते हैं।

ज्वार का उत्पादन देश में लगभग 36.47 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में मुख्यतः महाराष्ट्र, कर्नाटक, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश, एवं गुजरात में किया जाता है। ज्वार को खरीफ एवं रबी दोनों मौसम में उगाया जाता है। खरीफ ज्वार की उत्पादकता 1100-1200 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर एवं रबी ज्वार की उत्पादकता 600-700 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर है।

ज्वार को एक बारानी क्षेत्र की फसल माना जाता है। इसीलिए इसका उत्पादन पठारी क्षेत्रों एवं काली मृदा में अधिक होता है। ऐसे क्षेत्र जहां वार्षिक वर्षा 400 से 1000 मि.मी. होती है, ज्वार के उत्पादन हेतु उपयुक्त है। यह उत्तरी राज्यों में केवल खरीफ की फसल है

सारणी 1. प्रमुख अनाजों के प्रचलित नाम तथा पोषक तत्व

क्र.सं.	श्रीअन्न	पोषक तत्व (प्रति 100 ग्राम)					
	अंग्रेजी नाम	अन्य नाम	प्रोटीन (ग्राम)	फाइबर (ग्राम)	खनिज (ग्राम)	लौह (मि.ग्रा.)	कैल्शियम (मि.ग्रा.)
1	सोरघम	ज्वार, ज्वारी	10	4	1.6	2.6	54
2	पर्ल मिलेट	बाजरा, बाजरी	10.6	1.3	2.3	16.9	38
3	रागी/फिंगर मिलेट	रागी, नगली, मंदिका, नाचनी, मंडुआ	7.3	3.6	2.7	3.9	344
4	फॉक्सटेल मिलेट	ककुम, कंगनी, कंग	12.3	8	3.3	2.8	31
5	बार्नयार्ड मिलेट	श्यामा, सांवा, स्वांक	11.2	10.1	4.4	15.2	11
6	कोदो मिलेट	कोदों, कोदरा, कोदो, वरागु	8.3	9	2.6	0.5	27
7	लिटिल मिलेट	कुटकी, गजरो,सुअन, सामा	7.7	7.6	1.5	9.3	17
8	प्रोसो मिलेट	चीना, बरागु, वरि	12.5	2.2	1.9	0.8	14
9	टेफ	विल्लियम्स लव ग्रास	13	8	0.85	7.6	180
10	फोनिओ	सफेद फोनिओ, फोनिओ मिलेट, अछा राइस	11	11.3	5.31	84.8	18
11	ब्राउन टॉप मिलेट	पेड्डा-सामा और कोर्ने	11.5	12.5	4.2	0.65	0.01

स्वास्थ्य लाभ

श्रीअन्न प्राचीन काल से भारत में खाद्यान्न के रूप में प्रयुक्त फसलें रही हैं। ये फसलें भरपूर पोषण तथा विभिन्न स्वास्थ्य लाभों से परिपूर्ण हैं। ये फसलें कार्बोहाइड्रेट, सूक्ष्म पोषक तत्व तथा फाइटोकेमिकल तत्वों का बहुत अच्छा स्रोत हैं। प्रमुख अनाजों की तरह श्रीअन्न का मुख्य घटक कार्बोहाइड्रेट है। कार्बोहाइड्रेट में 65-70 प्रतिशत स्टार्च तथा 16-20 प्रतिशत गैर-स्टार्च कार्बोज होते हैं। इससे लगभग 95 प्रतिशत आहारीय रेशों की प्राप्ति होती है। ये आहारीय रेशे कब्ज की रोकथाम, रक्त कोलेस्ट्रॉल को कम करने तथा पाचन के दौरान रक्त ग्लूकोज के स्तर को नियंत्रित करने आदि में सहायक होते हैं।

रागी

जबकि आंध्रप्रदेश, कर्नाटक एवं तमिलनाडु में यह खरीफ एवं रबी दोनों सीजन में उगाई जाती है। ज्वार के उत्पादन हेतु पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सें.मी. एवं पौधों की संख्या 1.8 से 2.0 लाख प्रति हैक्टर होनी चाहिए। उर्वरक के रूप में 10 टन प्रति हैक्टर कम्पोस्ट एवं 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा 40 कि.ग्रा. फॉस्फेट खाद ज्वार के अच्छे उत्पादन हेतु आवश्यक है। ज्वार का उत्पादन अन्न एवं चारे दोनों के लिए किया जाता है।

रागी का उत्पादन देश के विभिन्न राज्यों में होता है। रागी एक वर्षा आधारित फसल के रूप में कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, ओडिशा, आंध्र प्रदेश में जून-जुलाई में,

सारणी 2. देश में श्रीअन्न फसलों की उपज के आंकड़े (वर्ष 2023-24)

श्रीअन्न	प्रदेश	क्षेत्रफल (लाख हैक्टर)	उत्पादन (लाख टन)	उपज (कि.ग्रा. प्रति हैक्टर)
ज्वार	महाराष्ट्र	16.00	14.04	878
	कर्नाटक	5.86	7.06	1204
	राजस्थान	5.09	5.27	1036
	भारत	36.47	40.34	1106
बाजरा	राजस्थान	42.65	42.81	1004
	उत्तर प्रदेश	10.10	21.95	2173
	हरियाणा	5.43	11.69	2154
	भारत	70.08	95.31	1360
रागी	कर्नाटक	6.82	8.65	1268
	तमिलनाडु	0.63	1.89	2989
	उत्तराखंड	0.69	1.01	1469
	भारत	10.37	13.86	1336
छोटे अनाज	मध्य प्रदेश	1.65	1.47	892
	उत्तराखंड	0.40	0.60	1503
	ओडिशा	0.48	0.27	566
	देश	4.96	4.29	864
कुल श्रीअन्न	राजस्थान	47.75	48.09	1007
	उत्तर प्रदेश	13.47	26.98	2003
	कर्नाटक	14.25	17.49	1227
	भारत	121.88	153.79	1262

सारणी 3. श्रीअन्न का देशवार उत्पादन (प्रतिशत)

देश	उत्पादन (प्रतिशत)
भारत	38.4
चाउ	2.25
बुर्किना फासो	2.94
सेनेगल	3.55
इथियोपिया	3.73
माली	5.98
नाइजीरिया	6.29
चीन	8.75
नाइजर	11.85

सारणी 5. प्रमुख श्रीअन्न फसलों का उत्पादन

फसल	उत्पादन (प्रतिशत)
बाजरा	62
कुटकी	3
रागी	9
ज्वार	26

सारणी 5. राज्यवार श्रीअन्न उत्पादन

राज्य	उत्पादन (प्रतिशत)
उत्तर प्रदेश	18
राजस्थान	32
आंध्र प्रदेश	3
उत्तराखंड	1
गुजरात	3
तमिलनाडु	4
मध्य प्रदेश	2
महाराष्ट्र	11
कर्नाटक	11
अन्य	2

उत्तराखंड एवं हिमाचल में अप्रैल-जून में एवं रबी मौसम की फसल के रूप में सितम्बर-अक्टूबर में कर्नाटक, तमिलनाडु एवं आंध्रप्रदेश में उगाई जाती है।

रागी के उत्पादन हेतु एक अच्छी तरह तैयार खेत में 22.5-30 सें.मी. पंक्ति से पंक्ति की दूरी पर बुआई की जाती है। कुछ प्रक्षेत्रों में 20 से 25 दिनों की पौध की रोपाई भी की जाती है। अच्छी पैदावार के लिए पौधों की एक उचित संख्या बनाए रखना आवश्यक होता है। उर्वरक के रूप में 5 टन प्रति हैक्टर कम्पोस्ट खाद एवं 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 20 कि.ग्रा. फॉस्फेट एवं 20 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है। रागी को एक अंत:वर्ती फसल के रूप में भी उगाया जाता है। मूंग, उड़द, सोयाबीन एवं मूंगफली इसके साथ उगाई जाने वाली प्रमुख अंत:वर्ती फसलें हैं।

कोदो, कुटकी एवं सांवा का उत्पादन पुरातन समय से भारत के विभिन्न जनजातीय क्षेत्रों में किया जाता है। प्रमुख उत्पादक राज्य मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात एवं महाराष्ट्र हैं। इनका उत्पादन मुख्यत: आदिवासी बाहुल्य इलाकों में होता है। मानसून आधारित क्षेत्रों में इनका उत्पादन प्रमुख रूप से होता है। साधारणतया बुआई जून के अंतिम सप्ताह अथवा जुलाई में की जाती है। आदिवासी बाहुल्य इलाकों में कुछ कम्पोस्ट खाद के उपयोग के साथ इनकी खेती होती है। इन फसलों में खाद का प्रयोग साधारणतया नहीं किया जाता। परन्तु 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 20 कि.ग्रा. फॉस्फेट प्रति हैक्टर का उपयोग कर इनके प्रति हैक्टर उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। फसल की विभिन्न गतिविधियां मानव श्रम एवं पशु ऊर्जा आधारित हैं।

सांवा

कंगनी एवं चीना का उत्पादन उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के ऐसे इलाकों में किया जा सकता है जहां सूखे की आशंका ज्यादा होती है। ये फसलें कम बारिश के इलाकों में उगाई जाती हैं। इनका उत्पादन आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश एवं कुछ उत्तर-पूर्वी राज्यों में होता है।

राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार के मैदानी भागों में जून-जुलाई में इनकी बुआई की जाती है। आंध्रप्रदेश, कर्नाटक में जुलाई-अगस्त में एवं तमिलनाडु में अगस्त-सितम्बर में इनकी बुआई होती है। कुछ सिंचित क्षेत्रों में इसे अप्रैल-मई में दो फसलों के बीच लिया जाता है। इन्हें ज्यादातर छिड़काव पद्धति से बोया जाता है। परन्तु अच्छा उत्पादन प्राप्त करने हेतु पंक्ति से पंक्ति की उचित दूरी 25-30 सें.मी. रखी जानी चाहिए। उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्सों में इन फसलों को मूंग के साथ अंत:वर्ती फसलों की तरह भी लिया जाता है। खाद का प्रयोग साधारणतया नहीं किया जाता है, परन्तु 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 20 कि.ग्रा. फॉस्फेट प्रति हैक्टर के प्रयोग से उत्पादन में वृद्धि प्राप्त की जा सकती है।

विभिन्न श्रीअन्न फसलों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि ज्यादातर ये फसलें आदिवासी एवं पिछड़े इलाकों में उगाई जाती हैं। कुछ फसलें जैसे रागी, चीना, कोदो, कुटकी, कंगनी इत्यादि दो फसलों के बीच भी ली जाती रही हैं। बारानी प्रक्षेत्रों में नई फसल उत्पादन तकनीक एवं बेहतर जल प्रबंधन कर इनकी उत्पादकता एवं उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। ■

बाजरा

बाजरे का उत्पादन अन्न एवं चारे दोनों उपयोग के लिए किया जाता है। राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश एवं तमिलनाडु इसके प्रमुख उत्पादक राज्य हैं। पारंपरिक रूप से बाजरे का उत्पादन बारानी खेती के रूप में किया जाता रहा है। उत्पादकता बढ़ाने हेतु संकर बीजों का उपयोग किया जाने लगा है। बाजरे का उत्पादन मुख्यत: कम उत्पादक एवं कम जल उपलब्धता वाली भूमि में किया जाता है। यह फसल विपरीत परिस्थितियों में भी अच्छा उत्पादन देती है। बाजरे का उत्पादन प्रमुखत: खरीफ के मौसम में होता है। इसकी बुआई हेतु राजस्थान, तमिलनाडु एवं महाराष्ट्र में हल्की लाल मृदा एवं बलुई मृदा, कर्नाटक की लाल मृदा एवं आंध्र प्रदेश की हल्की काली मृदा उपयुक्त है। बाजरे का उत्पादन मानसून मौसम में होता है। बीज की दर 5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर उपयुक्त मानी जाती है। इसकी बुआई हेतु पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सें.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 10-12 सें.मी. है। अच्छे उत्पादन हेतु 8-10 टन प्रति हैक्टर कम्पोस्ट खाद एवं 60-80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 40 कि.ग्रा. फॉस्फेट प्रति हैक्टर का उपयोग करना चाहिए। कुछ राज्यों में बाजरे के साथ अन्य अंत:वर्ती फसलें भी उगाई जाती हैं।

नदी प्रणाली में परिवर्तन के प्रभाव

अंजना एक्का, अरुण पंडित, गुंजन कर्नाटक और **सुनीता प्रसाद**

मानव विकास के प्रारंभिक चरण में नदी और पर्यावरण के साथ संतुलन बनाते हुए कृषि के लिए नदी धाराओं के प्रवाह को मोड़ने के प्रयास किए गए थे। वर्तमान में, मानव आवश्यकताओं के लिए जलधारा मार्ग में अत्यधिक बदलाव के कारण कई भारतीय नदियों का अस्तित्व आज संकट में है। भारत सरकार की एक रिपोर्ट के अनुसार, देश जल संकट से जूझ रहा है, जिससे लाखों लोगों का जीवन और आजीविका संकट में हैं। जल सुरक्षा किसी भी देश की आर्थिक समृद्धि, विकास और राजनीतिक स्थिरता को नियंत्रित करती है तथा जल आपूर्ति में अवरोध के कारण नदी घाटियों पर निर्भर लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति गंभीर रूप से प्रभावित होती है। नदियों और इनकी सहायक नदियों पर अत्यधिक बांध और बैराज के निर्माण से इनमें जल प्रवाह कम हो जाता है, जिससे इनके पारिस्थितिकी तंत्र पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है (गंगा बेसिन में 942 बैराज और बांध बनाए गए हैं)। इन बैराज और बांध के कारण प्रायद्वीपीय नदियों की स्थिति और भी चिंताजनक है।

भारत में, नदियों को सामाजिक और आर्थिक विकास के अलावा अध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक कल्याण के लिए भी जीवन रेखा माना जाता है। देश में कई तटवर्ती और आदिवासी समुदाय अपनी आजीविका के लिए नदियों और इससे संबद्ध आर्द्रभूमि पर निर्भर रहते हैं। उदाहरणस्वरूप, मध्य भारत में नर्मदा नदी बांध परियोजना के कारण पुनर्वास, वनरोपण और भूमि अतिक्रमण जैसी समस्याओं ने 'नर्मदा बचाओं' आंदोलन को जन्म दिया।

नदियों जैसे प्राकृतिक संसाधनों का असंगठित प्रबंधन अक्सर सामाजिक समस्याओं को जन्म देता है। इसका एक प्रमुख कारण जल उपयोगकर्ताओं एवं नदी द्वारा प्रदान की जाने वाली पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के बीच जटिल अंत:क्रिया को समझने में विफलता है।

मात्स्यिकी पर गहराता प्रभाव

भारत में विकास से जुड़ी गतिविधियां नदियों के बहाव को प्रभावित करती हैं। इस व्यवस्था में पारिस्थितिकी तंत्र की सेवाएं जैसे पर्यावरणीय सामाजिक और आर्थिक आयामों के बीच गहरा संबंध होता है।

नदियों की सामान्य पृष्ठभूमि

भारतीय उपमहाद्वीप की नदियां मौसमी वर्षा द्वारा नियंत्रित होती हैं। इसके अलावा, क्षेत्र का विविध भूविज्ञान और इतिहास, भी नदियों के निर्वहन, तलछट और बेसिन की विविधता को स्पष्ट करता है। जनसंख्या में लगातार वृद्धि के कारण नदी घाटियों और बाढ़कृत मैदानी भागों में लोगों की आबादी गहनता में तीव्रता आई है। भूगर्भीय, जल

भाकृअनुप-केन्द्रीय अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता-700120 (पश्चिम-बंगाल)

नदियों का बाढ़कृत झीलों और आर्द्रभूमि से संपर्क टूटना

नदियां अन्तर्स्थलीय मत्स्य प्रजातियों को आवास और स्थानीय मछुआरों को आजीविका भी प्रदान करती हैं। उदाहरण के लिए, चिलिका लैगून लगभग 200,000 स्थानीय मछुआरों के लिए आजीविका का स्रोत है। हालांकि, गाद जमाव से इसका संपर्क अन्य जल स्रोतों से बाधित हुआ है। इससे मछली पालन में तीव्र कमी के साथ आजीविका प्रभावित हुई है। बांध एवं जलाशयों के निर्माण तथा अत्यधिक जल दोहन के कारण नदियों में जल प्रवाह कम होने तथा गाद जमने से कई नदी और आर्द्रभूमि के संपर्क चैनल बंद हो गये हैं। ये आर्द्रभूमि में होने वाले जलविज्ञान परिवर्तन उनके पारिस्थितिक स्वास्थ्य को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकते हैं। रिपोर्ट के अनुसार थान्नीरमुक्कम बैराज ने वेम्बनाड आर्द्रभूमि के जलविज्ञान को प्रभावित किया, जिससे जलधारण क्षमता कम हो गई और यूट्रोफिकेशन देखा गया। जलवायु परिवर्तन से इन जलस्रोतों की स्थिति और भी गंभीर हुई है।

नदी से आजीविका

सारणी: स्रोतों द्वारा सिंचाई के अंतर्गत शुद्ध क्षेत्र ('000' हैक्टर)

सिंचाई स्रोत					शुद्ध सिंचित क्षेत्र
नहरें	टैंक	ट्यूबवेल	अन्य कुएं	अन्य स्रोत	
16278 (23.9 प्रतिशत)	1842 (2.7 प्रतिशत)	31126 (45.7 प्रतिशत)	11312 (16.6 प्रतिशत)	7542 (11.1 प्रतिशत)	68100 (100 प्रतिशत)

विज्ञान और मॉर्फो-टेक्टोनिक भारतीय नदियों को मुख्यत: दो प्रमुख भागों में विभाजित किया गया है-हिमालयी नदी प्रणाली और प्रायद्वीपीय नदी प्रणाली।

बारिश और हिमनदों के पिघलने तथा पहाड़ों में तीव्र कटाव के कारण हिमालयी नदियों में बड़ी मात्रा में रेत और गाद पाई जाती है। नदियों के मध्य और निचले प्रवाह में घुमावदार और ऑक्सबो झीलों का निर्माण होता है। उदाहरणस्वरूप, सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों ने दस लाख वर्ग किलोमीटर से अधिक के विशाल उपजाऊ जलोढ़ मैदानों का निर्माण किया है, जिसका उपयोग हजारों वर्षों से मनुष्य द्वारा खेती के लिए किया जाता रहा है।

गंगा-ब्रह्मपुत्र-मेघना बेसिन से लगभग 29 मिलियन हैक्टर क्षेत्र की सिंचाई होती है, जिसका 82.2 प्रतिशत हिस्सा भारत में है तथा इन नदी बेसिन का भारत की जलविद्युत क्षमता में लगभग 80 प्रतिशत का योगदान है। गंगा नदी और इसका बेसिन देश के ग्यारह राज्यों को 30 प्रतिशत जल संसाधन प्रदान करता है, जो मृदा की उर्वरता, खाद्य सुरक्षा और पर्यावरण के लिए महत्वपूर्ण है। गंगा बेसिन दुनिया में सबसे उपजाऊ और अत्यधिक सिंचित बेसिन के रूप में जानी जाती है।

बहुद्देशीय बांध से जल प्रबंधन

प्रायद्वीपीय नदियां मौसमी नदियां होती हैं, जो केवल वर्षा पर निर्भर होती हैं। इनका कोई भूमिगत जल स्रोत नहीं होता है। अधिकांश प्रायद्वीपीय नदियां पश्चिमी घाट से निकलकर पूर्व की ओर बहते हुए बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं जैसे-महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी। हालांकि, कुछ प्रायद्वीपीय नदियां (नर्मदा और तापी) मध्य उच्चभूमि से निकलकर पश्चिम की ओर बहती हैं। ये नदियां देश की जलविद्युत परियोजनाओं में महत्वपूर्ण योगदान के साथ प्रचुर वनों, वन्य जीवन और मीठा जल पारिस्थितिकी तंत्र को भी बनाए रखती हैं।

भारत में जलविज्ञान (हाइड्रोलॉजिकल)

देश में वर्ष 1951 में राष्ट्रीय पंचवर्षीय योजना प्रणाली शुरू की गई। खाद्य संकट ने हरित क्रांति को जन्म दिया, जिससे फसल उत्पादन के लिए पानी और उर्वरकों की मांग बढ़ने लगी। पहली तीन पंचवर्षीय योजनाएं कृषि, बिजली आपूर्ति और मूल्य स्थिरता पर केन्द्रित थी। इस प्रकार कई बहुउद्देशीय बांधों का विकास किया गया जैसे

भाखड़ा नंगल, नागार्जुनसागर, कोसी, चंबल, हीराकुंड, काकरापार और तुंगभद्रा आदि, ताकि विकासात्मक आवश्यकताओं के लिए जल का उपयोग किया जा सके। इन बांधों का निर्माण बहुउद्देशीय उपयोग के लिए किया गया, जैसे कि जलविद्युत, सिंचाई और घरेलू जल आपूर्ति।

बांधों को विकास और आर्थिक वृद्धि का प्रतीक माना गया है और उन्हें आधुनिक भारत के 'मंदिर' के रूप में देखा जाता है।

सिंचाई क्षमता को बढ़ाने के लिए, विभिन्न लघु और प्रमुख योजनाएं भी शुरू की गईं, जिनमें कमांड एरिया विकास कार्यक्रम शामिल है। इसका उद्देश्य सिंचाई क्षमता वृद्धि और उपलब्ध भूमि और जल का अनुकूल उपयोग करना था। वर्तमान में, नलकूपों द्वारा जल निकासी देश के कुल सिंचित क्षेत्र का 46 प्रतिशत और नहरें 24 प्रतिशत हैं।

फसल उत्पादन की तीव्रता बढ़ाकर खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भरता हासिल की गई, किन्तु इसके लिये नदियों पर बांध बनाना, जल प्रवाह को मोड़ना और बड़े पैमाने पर भूजल का दोहन करना पड़ा। जल भंडारण और जल निकासी के अलावा, जलग्रहण क्षेत्रों में भूमि उपयोग में बदलाव जलविज्ञान में परिवर्तन का एक प्रमुख कारण रहा है।

कालांतर में, भारत में वन्य क्षेत्र 89 मिलियन हैक्टर से घटकर 63 मिलियन हैक्टर हो गया, जबकि कृषि भूमि का क्षेत्र 92 मिलियन हैक्टर से बढ़कर 140 मिलियन हैक्टर हो गया। भारत में लवणीय मृदा का क्षेत्र 6.727 मिलियन हैक्टर है। आंध्र प्रदेश में समुद्री जल का उपयोग करके झींगा की बड़े पैमाने पर खेती भी तटीय क्षेत्र की लवणता को प्रभावित कर रही है। इससे यह मृदा कृषि उपयोग के लिए अनुपयुक्त हो रही है। हालांकि, भारत में जलविज्ञान चक्र और पारिस्थितिकी तंत्र पर भूमि उपयोग स्वरूप में बदलाव के प्रभाव की अभी विस्तृत जांच बाकी है।

जलीय पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं पर जलविज्ञान संबंधी परिवर्तनों का प्रभाव

पारिस्थितिक प्रभाव

बांध निर्माण और भूजल का दोहन, नदी पारिस्थितिकी तंत्र और उनकी विनियमन और समर्थन सेवाओं पर दूरगामी प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिए, भारत में ब्राह्मणी नदी पर बने रेंगाली बांध के कारण अनुप्रवाह में तलछट सांद्रता कम होने से कृषि उत्पादकता में कमी पाई गई। इसके अलावा, अनुप्रवाह में लवणता बढ़ने से जल की पारदर्शिता कम हो गई, जिससे भारतीय सुंदरबन में पादप प्लवक, मछली उत्पादन और प्रजाति विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इस कारण बड़े पैमाने पर मछलियों की मृत्यु हुई। इसी प्रकार, दस प्रमुख नदी बेसिनों में औद्योगिकीकरण, सिंचाई, उर्वरक खपत और जल गुणवत्ता के बीच नकारात्मक संबंध को देखा गया।

जल प्रवाह एवं इसकी मात्रा कम होने से नदियों में अपशिष्ट सांद्रता की वृद्धि होती है। इससे जल प्रदूषण बढ़ गया है तथा स्वदेशी मछलियों की उपज कम एवं विदेशी मछलियों की उपज में वृद्धि देखी गई है। इसके अलावा, अत्यधिक भूजल दोहन से भूजल भंडारण में भी कमी आई है। उदाहरण के लिए, कोलकाता में अत्यधिक जल निष्कर्षण के कारण आर्टीजियन दबाव कम होने से भूमि धसाव जैसी घटनाएं देखी गईं।

सिंचाई जल आपूर्ति

भूमि उपयोग और आवरण परिवर्तन

भूमि उपयोग और भूमि आवरण परिवर्तन जलविज्ञानीय चक्रों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। पूर्वी भारत की नदी घाटियों में परिवर्तन के प्रभावों का अध्ययन किया गया और रन ऑफ, बेस फ्लो और वाष्पोत्सर्जन पर ध्यान केंद्रित किया गया। अध्ययन में पाया पाया कि वनों की कटाई और शहरीकरण ने कैनोपी विस्तार को कम कर दिया, जिससे वाष्पोत्सर्जन में कमी और रन ऑफ तथा बेस फ्लो में वृद्धि हुई।

सामाजिक पारिस्थितिक विच्छेद

किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र में जलवैज्ञानिक परिवर्तनों का सामाजिक सेवाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इससे सामाजिक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। उदाहरण के लिए, गंगा नदी पर फरक्का बैराज ने हिल्सा मछली के अभिगमन, उपलब्धता और प्रचुरता पर प्रभाव डाला, जिससे मछुआरों की आजीविका प्रभावित हुई। वहीं दूसरी ओर, एनटीपीसी फरक्का प्लांट को अपर्याप्त जल आपूर्ति के कारण बिजली उत्पादन में नुकसान का सामना करना पड़ा।

जैव विविधता और आवास

नदी परिदृश्यों ने विविध जीव प्रजातियों के लिए महत्वपूर्ण आवास प्रदान किया है, जो जैव विविधता को बढ़ावा देता है। हालांकि, जलवायु परिवर्तन और आवास विघटन पारिस्थितिकी में महत्वपूर्ण बदलाव ला सकते हैं, जो जैव विविधता को संकट में डाल सकते हैं। इसके साथ ही नदियों के सांस्कृतिक मूल्यों एवं सौंदर्य को भी कम कर सकते हैं। भारत के संरक्षित क्षेत्र, जिनमें कई राष्ट्रीय उद्यान और वन्यजीव अभयारण्य शामिल हैं, विशेष रूप से ऐसे परिवर्तनों से प्रभावित हुए हैं।

भावी परिदृश्य

भारत की नदियों में प्राकृतिक और मानवजनित गतिविधियों से प्रेरित जलविज्ञान में हुए परिवर्तन के प्रभाव गहरे और बहुआयामी हैं। इन बदलावों ने जल विनियमन, पारिस्थितिकी, सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था पर गहरा प्रभाव डाला है। नदियों ने जैव विविधता और सांस्कृतिक परंपराओं का पोषण किया है। बांध, भूजल दोहन, भूमि उपयोग और भूमि आवरण परिवर्तन एवं रेत खनन ने जल की गुणवत्ता, जैव विविधता तथा मछुआरों की आजीविका को प्रभावित किया है। नदी प्रणालियों के पारिस्थितिकीय स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के लिए एक संतुलित दृष्टिकोण आवश्यक है। पर्यावरणीय और सामाजिक-आर्थिक दोनों कारकों को सम्मिलित करने से सतत विकास और सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित किया जा सकता है। अतः प्रमुख जलवायु परियोजनाओं को शुरू करने से पहले वैज्ञानिक और सामाजिक समीक्षा का एकीकृत प्रयास किया जाना चाहिए, ताकि प्रतिकूल प्रभावों को कम किया जा सके। अतः सामूहिक प्रयासों के माध्यम से नदी के स्वास्थ्य को संरक्षित कर भावी पीढ़ियों के लिए पारिस्थितिक अखंडता और सामाजिक-आर्थिक स्थिरता को सुनिश्चित किया जा सकता है।

हरा चारा फसलों का लाभकारी उत्पादन

विक्रम भारती, बृजेश कुमार, हरेन्द्र सिंह, राजेन्द्र प्रसाद और **असीम कुमार मिश्र**

भारत में दुधारू पशुओं की पोषण पूर्ति मुख्यत: फसलों के अवशेष तथा चारा फसलों से होती है। देश में दुधारू पशुओं की संख्या सबसे अधिक है, जो विश्व की संख्या का लगभग 21 प्रतिशत है, लेकिन देश में पाये जाने वाले दुधारू पशुओं में दुग्ध उत्पादन क्षमता बहुत ही कम है। इसके कई कारणों में प्रमुख कारण पशु आहार में हरे चारे का कम उपयोग होना है। हमारे यहां अधिकांश किसान अपने पशुओं को ज्यादा मात्रा में धान का पुआल एवं गेहूं का भूसा खिलाते हैं, जो पौष्टिकता के आधार पर उत्तम आहार नहीं है। इसके साथ ही साथ स्वादिष्ट एवं रुचिकर भी नहीं है। वजन की दृष्टि से पशुओं के आहार में 50 प्रतिशत चारे की आवश्यकता होती है। इस तरह हरे चारा का उपयोग 50 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। इसके अलावा हरा चारा फसलों का उत्पादन पशुपालन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। हरा चारा पशुओं को संतुलित आहार प्रदान करता है, दूध उत्पादन को बढ़ाता है। इसके साथ पौष्टिक और अनुकूल होता है। इससे किसानों की आय में वृद्धि होती है।

बिहार में कम क्षेत्रों पर ही चारा फसलों की खेती होती है, वहीं प्रति इकाई क्षेत्र से चारे की कम पैदावार प्राप्त होती है। इस राज्य में कुल कृषि क्षेत्र की लगभग 4-5 प्रतिशत भूमि पर ही चारा उत्पादन किया जा रहा है। पशुओं के पोषण में मुख्य स्रोत के रूप में चारा अति महत्वपूर्ण है। अत: पशुओं की दुग्ध उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक तरीके से चारा उत्पादन करना अति आवश्यक है।

डा. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर (बिहार)

प्राय: ग्रीष्म ऋतु में चारे की भारी कमी रहती है। जायद हरे चारे के रूप में उगाई जाने वाली मुख्य फसलों में लोबिया (बोड़ा), ज्वार, बाजरा, मक्का, मकचरी, ज्वार एवं कुल्थी प्रमुख हैं। इसके लिए उन्नत किस्मों की बुआई, खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग, सिंचाई, पौध संरक्षण उपाय आदि कार्यों को समय पर किया जाना चाहिए।

गर्मी के मौसम में नमी संरक्षण की समस्या सबसे प्रमुख होती है। सभी फसलों की बुआई बलुई दोमट से दोमट मृदा में करना उत्तम होता है। ग्रीष्म एवं खरीफ दोनों ही मौसम के लिए चारा फसलों में उचित जल प्रबंधन द्वारा ही भरपूर उत्पादन संभव है। फरवरी से जुलाई तक बुआई की जा सकती है।

सामान्यत: तोरी-सरसों के खाली खेतों में इन चारा फसलों की बुआई की जाती है। इनकी अगेती बुआई को विलम्ब से कटाई की लम्बी अवधि वाली धान तथा गन्ने से खाली खेतों में भी करते हैं। गन्ने के खाली खेतों में चारा उत्पादन हेतु अधिक जुताई करनी चाहिए। बुआई से पूर्व बीजों को कवकनाशी रसायन कार्बेण्डाजिम (बाविस्टिन) 1 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज, थीरम या कैप्टॉन 2.0 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। पोषण एवं लाभ से भरपूर निम्न चारा

मकचरी

इसकी बुआई फरवरी से जुलाई तक कर सकते हैं। इसकी उन्नत मकचरी किस्म लगायी जा सकती है। इसकी बुआई हल के पीछे 40-45 सें.मी. की दूरी पर पंक्तियों में की जानी चाहिए। बुआई से पूर्व 5 टन प्रति हैक्टर कम्पोस्ट खेत में अच्छी तरह मिला देनी चाहिए। बुआई के समय 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर खेत में दी जानी चाहिए। नाइट्रोजन की 30 कि.ग्रा. मात्रा बुआई के 30-35 दिनों पर सिंचाई के समय दी जानी चाहिए। इसकी कटाई 1-2 बार की जाती है। चारे की उपज 500-600 क्विंटल प्रति हैक्टर प्राप्त की जा सकती है। हरे चारे में 1.7 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन की मात्रा पायी जाती है।

ज्वार

फसलों का वैज्ञानिक विधि से सफल उत्पादन किया जा सकता है:

लोबिया

इसकी खेती हरे चारे की मुख्य फसल के रूप में की जाती है। इसे शुद्ध या मिश्रित फसल के रूप में ज्वार, बाजरा, मक्का, मकचरी आदि के साथ लगाते हैं। यूपीसी-5286, यूपीसी-5287 तथा आईएफसी-8401 इसकी उन्नत किस्में हैं। इस फसल की बुआई के लिए 30-35 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। बीजों की बुआई 30-40 सें.मी. पंक्ति से पंक्ति की दूरी पर करनी चाहिए।

लोबिया एक दलहनी फसल है, इसलिए राइजोबियम कल्चर से उपचारित कर बीज बोने से उपज में वृद्धि होती है। बुआई से पूर्व 5 टन कम्पोस्ट, 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा 40 कि.ग्रा., फॉस्फोरस मृदा में अच्छी तरह से मिला देनी चाहिए। ग्रीष्म ऋतु फसल में 15-20 दिनों के अन्तराल पर 3-4 सिंचाई की आवश्यकता होती है।

खारीफ मौसम में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। प्रथम कटाई 50 प्रतिशत पुष्पावस्था में करने पर अधिकतम फसलों में अधिक पोषक तत्व मिलते हैं। इसके पूर्व एवं बाद में कटाई करने पर इसकी गुणवत्ता में कमी आती है। दोहरी कटाई वाली फसल में प्रथम कटाई बुआई के 50-55 दिनों बाद तथा दूसरी पुष्पावस्था में करनी चाहिए। हरे चारा की पैदावार 350-400 क्विंटल प्रति हैक्टर प्राप्त हो सकती है। इसके हरे चारा में 30 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन की मात्रा होती है।

लोबिया

कुल्थी

कुल्थी को दाना तथा चारा दोनों ही उद्देश्य के लिए उगाया जाता है। यह फसल 'हे' तथा हरी खाद के लिए भी उत्पादित की जाती है। इसकी बुआई जुलाई में करते हैं तथा अक्टूबर-नवम्बर में काटते हैं। बुआई हेतु बीज दर 40 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर उपयोगी है। यदि मृदा अच्छी है, तो खाद उर्वरक की जरूरत नहीं होती। सामान्य स्थिति में 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर की दर से पर्याप्त होती है। स्थानीय किस्मों के अलावा कोयम्बटूर-1, बीआर-5, बीआर-10, एस-67126, एस-67/14 तथा एस-67/31 प्रचलित हैं। इससे लगभग 200-250 क्विंटल प्रति हैक्टर हरा चारा प्राप्त होता है। हरे चारे की कटाई फूल तथा फलियां बनने के समय करनी चाहिए। इससे अधिक पौष्टिक तथा स्वादिष्ट चारा मिलता है।

ज्वार

चारे की दूसरी मुख्य फसल ज्वार है। ज्वार में सूखे का सामना करने की क्षमता होती है। इसके साथ ही साथ अधिक नमी सहने की क्षमता होती है। ज्वार की एक कटाई वाली तथा बहु कटाई वाली दो प्रकार की किस्में होती हैं। एक कटाई वाली किस्में पीसी 23, एमपी चरी, राजचरी तथा बहु कटाई वाली

किस्में मीठी सूडान, एमएफएसएच 3 तथा हरा सोना प्रमुख हैं। इसके लिए 25-30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बीज को आवश्यकता होती है। बुआई छिटकवां विधि या पंक्तियों में कर सकते हैं। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30-40 सें.मी. रखनी चाहिए। बुआई के पूर्व 10 टन कम्पोस्ट, 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस मृदा में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। इसके अलावा 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रत्येक कटाई के उपरान्त सिंचाई के समय देनी चाहिए। जायद फसल में 3-4 सिंचाई की आवश्यकता होती है। एक कटाई वाली किस्मों की पैदावार 65 से 75 दिनों में 350-500 क्विंटल/हैक्टर तथा बहु कटाई वाली किस्मों की पैदावार 750-1000 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त की जा सकती है।

मकचरी

बाजरा

असिंचित अवस्था में बाजरे की बुआई मानसून के आरम्भ में करते हैं। सिंचाई की सुविधा वाली जगहों पर इसे फरवरी में भी बोया जा सकता है। जॉयन्ट बाजरा, एफएमएच-3, यूयूजे-4 तथा टीएनएससी-1 अधिक उपज देने वाली उन्नत किस्में हैं। इस फसल को छिटकवां विधि से बुआई करने पर 15-18 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बीज की आवश्यकता होती है। इस फसल की 30-40 सें.मी. की पंक्तियों में बुआई करने पर 10-12 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बीज की आवश्यकता होती है। बुआई से पूर्व 10 टन कम्पोस्ट, 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथ 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर मृदा में अच्छी तरह से मिला देना चाहिए।

जायद मौसम में आवश्यकतानुसार 3-4 सिंचाई देनी चाहिए। बालियां निकलने के समय इसकी कटाई करनी चाहिए। हरे चारे की उपज 600-700 क्विंटल प्रति हैक्टर प्राप्त की जा सकती है। हरे मौसम में क्रूड प्रोटीन की मात्रा 1.5 प्रतिशत होती है।

मक्का

पशुओं को स्वादिष्ट हरा चारा प्रदान करने के लिए मक्का की बुआई मध्य फरवरी से सितम्बर तक उचित जल निकास वाली मृदा में कर सकते हैं। भरपूर हरा चारा प्राप्त करने के लिए अफ्रीकन लांग विजय, पीएफएम-99-2 तथा एपीएम-8 मक्का की उन्नत किस्में हैं। इसके लिए बीज दर 40-50 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर उपयुक्त है। बुआई 30-40 सें.मी. की दूरी पर पंक्तियों में करनी चाहिए। बुआई से पूर्व 10 टन प्रति हैक्टर कम्पोस्ट मृदा में अच्छी तरह से मिला देनी चाहिए।

मक्का के लिए नाइट्रोजन 80 कि.ग्रा. तथा फॉस्फोरस 40 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर अनुशंसित है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस की पूरी मात्रा बुआई के समय देनी चाहिए। शेष मात्रा को बुआई के 30-40 दिनों बाद पंक्तियों में समान रूप से बुरकाव कर देनी चाहिए। जायद मौसम में आवश्यकतानुसार 3-4 सिंचाई उपयुक्त मानी जाती है। इसकी कटाई किस्म के अनुसार 60-70 दिनों में करनी चाहिए। हरे चारे की पैदावार 550-750 क्विंटल प्रति हैक्टर प्राप्त की जा सकती है। हरे चारे में क्रूड प्रोटीन की मात्रा 2.0 प्रतिशत होती है।

ग्वार

भारत में इसकी खेती अधिकांश रूप से शुष्क क्षेत्रों में की जाती है। इसकी खेती चारे के लिए सब्जी तथा हरी खाद के लिए की जाती है। ग्वार के गोंद को विदेश में निर्यात किया जाता है। ग्वार के दाने में 18 प्रतिशत प्रोटीन तथा 32 प्रतिशत रेशा पाया जाता है।

दुधारू पशुओं के लिए ज्वार का दाना बेहद पौष्टिक होता है। जब इसमें फूल तथा फलियां बनना शुरू हों, तब उसी समय कटाई कर पशुओं को खिलाना चाहिए। यह वर्षा ऋतु में उगाई जाने वाली फसल है। पानी की बेहतर सुविधा होने पर इसे जायद में भी उगाया जा सकता है। इसकी खेती बुलई दोमट से दोमट मृदा में की जाती है। इसे 7.5 से 8.5 पी-एच मान की मृदा में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। सुविधा, दुर्गापुर सफेद, अगेती ग्वार-111, अगेती ग्वार 112 ग्वार-80 आईजीएफआरआई-112, बुन्देल ग्वार-1 और 3, पंजाब ग्वार-2 तथा स्थानीय कुछ किस्में हरे चारा तथा दाना दोनों के लिए प्रयोग कर सकते हैं।

उत्तरी भारत में ग्वार की बुआई जून-जुलाई तथा मार्च में की जानी चाहिए। चारे के लिए ग्वार की बुआई अप्रैल से मध्य जुलाई तक करनी चाहिए। दाना प्राप्त करने के लिए 15-20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर तथा चारा के लिए 40-45 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बीज दर की आवश्यकता होती है। उर्वरक की मात्रा दलहनी फसलों की तरह 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा 40-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर की दर से डालनी चाहिए ।

ग्वार की चारा फसल के लिए फूल आने तथा फली बनने की अवस्था में कटाई कर पशुओं को खिलाना चाहिए। इसमें 'साइलेज' तथा 'हे' भी बनाया जाता है। इस फसल से लगभग 250-300 क्विंटल प्रति हैक्टर हरा चारा मिल जाता है।

दुग्धोत्पादन बढ़ाने में पौष्टिक हरे चारे का महत्वपूर्ण योगदान है। उच्च गुणवत्ता वाले हरे चारे से पशुओं को पौष्टिक तत्व मिलते हैं। पशुओं से अधिक दूध का उत्पादन करके ही किसान अधिक लाभान्वित हो सकते हैं। हरे चारे की फसलों का उत्पादन पशुपालन की स्थिरता एवं कृषि की समग्र प्रगति के लिए आवश्यक है। सतत कृषि प्रणाली को अपनाकर एवं उन्नत तकनीकों का उपयोग कर हरे चारे की उत्पादन क्षमता को और अधिक बढ़ाया जा सकता है। ■

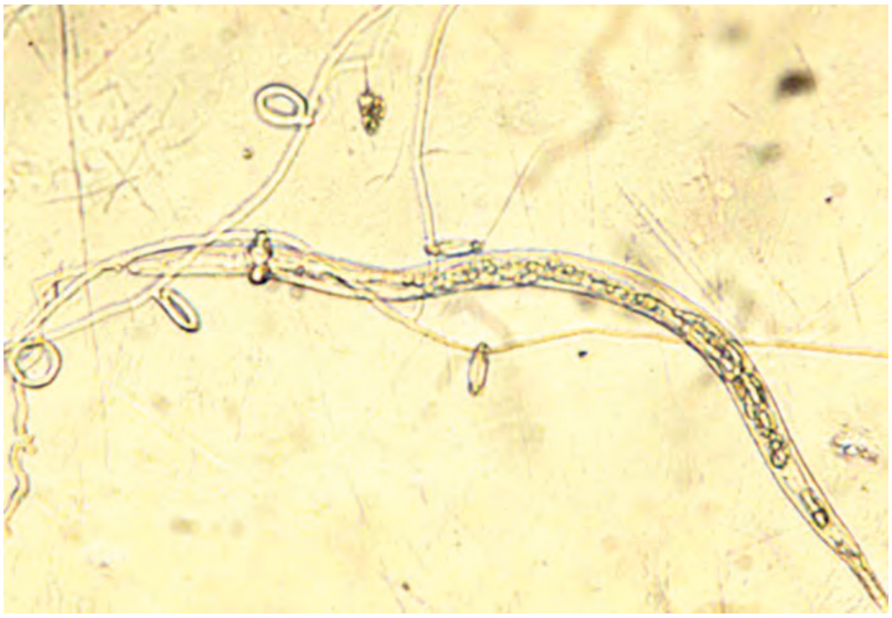

नेमाटोड का मृदा पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव

दीपक कुमार[1], **रविकांत शर्मा**[2] और **राम नारायण कुम्हार**[1]

"मृदा स्वास्थ्य का तात्पर्य है कि मिट्टी इतनी अच्छी हो कि उसमे पौधे ठीक से उग सकें, पर्यावरण संतुलित रहे और पौधों एवं पशुओं का स्वास्थ्य भी बेहतर बना रहे। इसके लिए मृदा को जरूरी पोषक तत्व प्रदान करने, जलधारण क्षमता और मृदा की उर्वराशक्ति को बनाये रखने की जरूरत होती है। नेमाटोड या राउंडवर्म बहुत छोटे जीव होते हैं, जो मृदा में रहते हैं। ये धरती पर पाए जाने वाले सबसे पुराने जीवों में से एक हैं। इनका शरीर एक सिर और एक पूंछ वाला होता है। इनके शरीर में केंद्रीय तंत्रिका एवं प्रजनन प्रणाली भी होती है। नेमाटोड को उनकी आहार प्राथमिकताओं के आधार पर पादप भक्षक, जीवाणु भक्षक, कवक भक्षक, शैवाल भक्षक, पशु शिकारी और सर्वभक्षी के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। प्रबंधित प्रणालियों में कई लाभकारी नेमाटोड जैविक कीट नियंत्रक के रूप में कार्य करते हैं, जबकि अन्य प्राकृतिक पारिस्थितिकी और मिट्टी के पोषक चक्र को बनाए रखते हैं। विभिन्न पोषी स्तरों पर मृदा खाद्य जाल में विभिन्न सूत्रकृमि की भूमिका होती है। सतही मिट्टी के क्षितिज में नेमाटोड की सांद्रता सबसे अधिक है। नेमाटोड, मृदा में पोषक चक्र को बनाये रखने में मदद करते हैं। ये नाइट्रोजन एवं विटामिन जैसे आवश्यक पोषक तत्वों को मृदा में संचारित करते हैं। इससे पौधों की बेहतर वृद्धि होती है।"

मृदा में उपस्थित नेमाटोड बैक्टीरिया या फफूंद को अधिक बढ़ने नहीं देते हैं। इससे मृदा का संतुलन बना रहता है। इसके साथ ही कुछ नेमाटोड इन बैक्टीरिया-भक्षी नेमाटोड को खाते हैं, जिससे पूरे खाद्य जाल का उचित संतुलन बना रहता है। नेमाटोड सूक्ष्म मगर बेहद आवश्यक जीव हैं। ये मृदा के स्वास्थ्य और उर्वराशक्ति को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

नेमाटोड प्रजातियां विभिन्न प्रकार के वातावरणों में पाई जाती हैं। इनमें मैदानी क्षेत्र, वनक्षेत्र (वुडलैंड्स) और किसानों के खेत शामिल हैं। मृदा की बनावट, उसकी संरचना, हवा, मृदा का तापमान, वर्षा, मृदा की नमी, वाष्पीकरण, मृदा की चालकता, पी-एच और पौधे की बीज सामग्री ये सभी कारक नेमाटोड के विकास में अहम भूमिका निभाते हैं।

तापमान मृदा में नेमाटोड की सक्रियता और वितरण को भी प्रभावित करता है। इसी प्रकार नमी और तापमान में उतार-चढ़ाव भी नेमाटोड की मृदा में उपस्थिति को नियंत्रित करते हैं। जलवायु संबंधी कारक मुख्य रूप से, खेती की प्रक्रियाओं के कारण नमी और तापमान में उतार-चढ़ाव होता है और इसलिए यह मृदा की संरचना को बदलता है। परिणामस्वरूप, कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में नेमाटोड की विविधता प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र की तुलना में कम पाई जाती है। इसके अतिरिक्त नेमाटोड बायोमास भी मृदा की सरंध्रता को प्रभावित करता है। कुल मृदा का बायोमास दोमट मृदा (0.3 प्रतिशत) या चिकनी मृदा (0.1 प्रतिशत) की तुलना में रेतीली मृदा (0.6 प्रतिशत) में बायोमास कार्बन से अधिक रहता है, जिससे नेमाटोड पर प्रभाव पड़ता है।

[1]सूत्रकृमि विभाग; [2]कृषि रसायन विज्ञान और मृदा विज्ञान विभाग, अनुसंधान निदेशालय, राजस्थान कृषि महाविद्यालय परिसर, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

आहार शैली के आधार पर नेमाटोड के प्रकार

- पादप-आहार सूत्रकृमि (जड़-आहार सूत्रकृमि; फाइटोफैगस पादप परजीवी)
- कवक आहार नेमाटोड (कवकभक्षी; माइकोफेज)
- जीवाणु-आहार सूत्रकृमि (सूक्ष्मजीव-भक्षी; जीवाणुभक्षी)
- शिकारी सूत्रकृमि
- सर्वाहारी सूत्रकृमि

नेमाटोड की आहार प्रणाली

पादप परजीवी: नेमाटोड जो ऊंचे पौधों को क्षति पहुंचाते हैं, स्टाइलेट्स से युक्त होते हैं। ये स्टाइलेट्स विभिन्न आकृतियों और संरचनाओं के होते हैं, जो विभिन्न पौधों की कोशिकाओं से पोषक तत्वों को निकाल देते हैं। इन नेमाटोड समूहों में पौधों को संक्रमित करने और फसल उत्पादकता को प्रभावित करने की क्षमता होती है।

कवक भक्षी: नेमाटोड में 'प्रोट्यूसिबल खोखले स्टाइलेट्स' होते हैं, जो पौधों के हानिकारक कवक सहित फंगल मायसेलियम, हाइफे और कोनिडिया जैसे घटकों का भक्षण करते हैं। उदाहरण के लिए, एफेलेनचस प्रजातियां और एफेलेनचोइड्स शेमाटस।

बैक्टीरिया-भक्षी: नेमाटोड में बेलनाकार या त्रिकोणीय ट्यूब के रूप में एक सरल, खुला और पारगम्य मुखरंध्र होता है। ये नेमाटोड बीजों से रिसने वाले बल्ब- जैसे तरल में उपस्थित बैक्टीरिया एवं सूक्ष्मजीवों पर आश्रित रहते हैं। एक्रोबेल्स प्रजातियां इसका एक अच्छा उदहारण हैं, जो मुख्यत: रेतीली मृदा में पाई जाती हैं।

शिकारी नेमाटोड: ये अन्य नेमाटोड का भक्षण करते हैं, उनमें एक मोनॉक्स प्रकार का स्टाइलेट या एक विस्तृत कप के आकार का कटिकुलर लाइन स्टोमा होता है, जो मजबूत दांतों से लैस होता है, उदाहरण के लिए, मोनॉक्स प्रजाति, पैराजेरकॉन रेडियेटस आदि।

सर्वाहारी नेमाटोड: विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीवों जैसे कि शैवाल, बैक्टीरिया, कवक, प्रोटोजोआ, रोटिफेरा, टार्डिग्राड आदि को खाते हैं। उदाहरण के लिए डोरिलेमस प्रजातियां जो माइक्रोअर्थोपोड्स पर आहार के लिए निर्भर होती हैं।

मृदा में नेमाटोड की भूमिका

नेमाटोड मृदा की पारिस्थितिकी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं:

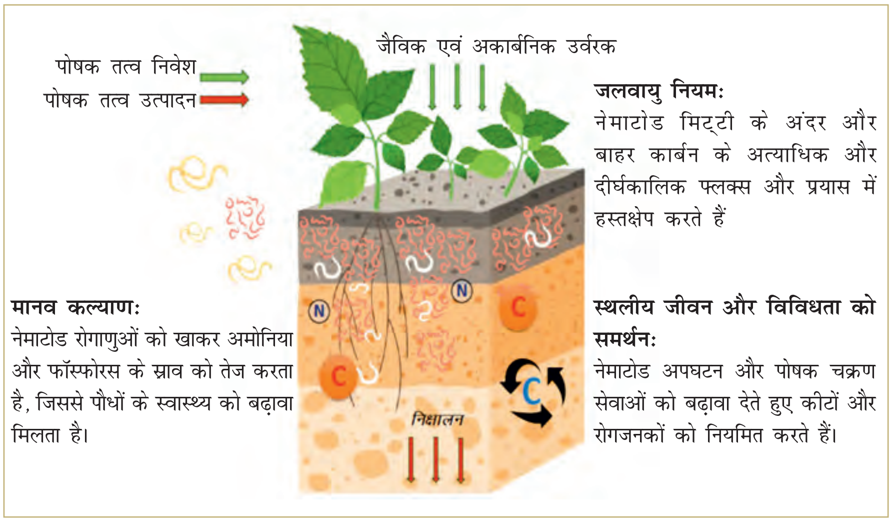

जलवायु परिवर्तन के तहत नेमाटोड समुदाय और मृदा स्वास्थ्य

- **कार्बनिक पदार्थ के अपघटन में योगदान:** 5-8 प्रतिशत
- **जीवाणुयुक्त फसल:** 5-25 प्रतिशत
- **कुल शुद्ध नाइट्रोजन खनिजीकरण में योगदान:** 4-22 प्रतिशत
- **पारिस्थितिक विकास दक्षता (प्रति उपभोग उत्पादन):** 10 प्रतिशत

नेमाटोड द्वारा बैक्टीरिया से ग्रहण किए गए अधिकांश अवशोषित कार्बन और नाइट्रोजन उत्सर्जित होते हैं। दूसरी ओर बैक्टीरिया अक्सर आत्मसात किए गए कार्बन के अधिकांश हिस्से को श्वसन करते हैं, जबकि अधिकांश आत्मसात किए गए नाइट्रोजन को स्थिर कर देते हैं। परिणामस्वरूप, मृदा के पारिस्थितिकी तंत्र में बैक्टीरिया की तुलना में, नेमाटोड नाइट्रोजन खनिजीकरण में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते हैं।

नाइट्रोजन खनिजीकरण में योगदान देने के अलावा, कई मुक्त-जीवित नेमाटोड, विशेष रूप से जीवाणुभक्षी, सर्वाहारी और शिकारी नेमाटोड की प्रचुरता, परती खेत में कई अन्य मृदा के पोषक तत्वों की सांद्रता के साथ सहसंबद्ध पाई गई, जिसका अर्थ है कि नेमाटोड विभिन्न प्रकार के खनिजों को खनिज कर सकते हैं। अन्य पोषक तत्व, नाइट्रोजन और विटामिन जैसे विकास-सीमित तत्वों को जारी करके, नेमाटोड मेटाबोलाइट्स विशेष जीवाणु विकास को भी बढ़ावा दे सकते हैं।

दूसरी ओर, नेमाटोड द्वारा बैक्टीरिया या कवक आबादी का अधिक भक्षण, विश्लेषण करने की कुल गतिविधि को कम कर सकता है। सौभाग्य से, सामान्य शिकारी मृदा के खाद्य जाल में इन जीवाणुभक्षी और कवकभक्षी नेमाटोड का शिकार करते हैं। इससे पोषक चक्रण को बढ़ावा मिलता है और अधिक पोषक तत्वों को जारी करने की अनुमति मिलती है।

मृदा संतुलन में योगदान देने वाले कई जीव हैं, जैसे प्रोटोजोआ, नेमाटोड, कोलेम्बोलन, घुन, कीट लार्वा, केंचुए, बैक्टीरिया और कवक। नेमाटोड जो बड़ी संख्या में मौजूद हैं और मृदा के खाद्य जाल में स्वतंत्र रूप से रहते हैं, मृदा के कार्बनिक पदार्थों के अपघटन और पोषक तत्वों को खनिज बनाने में महत्वपूर्ण हैं। ■

मृदा पोषक चक्र में उपयोगी

नेमाटोड, मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों के अपघटन एवं पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पौधों के अंदर नाइट्रोजन खनिजीकरण और बायोमास वितरण में नेमाटोड की प्रत्यक्ष भूमिका होती है। पौधे के ग्रहण हेतु पोषक तत्वों की उपलब्धता के लिए मृदा में मौजूद अपशिष्ट और कार्बनिक अवशेषों का विघटन आवश्यक होता है। मृदा खाद्य जाल में, कार्बनिक पदार्थों के अपघटन को दो ऊर्जा प्रणालियों में विभाजित किया जा सकता है, एक तेज जीवाणु प्रणाली और एक धीमी कवक-आधारित प्रणाली। प्राथमिक अपघटन मार्ग मृदा के पारिस्थितिकी तंत्र के प्रकार और पोषक तत्वों के अनुपातों, जैसे कार्बन:नाइट्रोजन अनुपात द्वारा निर्धारित होते हैं। जब जीवाणुभक्षी और कवकभक्षी नेमाटोड इन सूक्ष्मजीवों (बैक्टीरिया एवं फफूंद) को खाते हैं, तो अपघटन की प्रक्रिया के दौरान CO_2,NH_4^+ और अन्य नाइट्रोजनयुक्त यौगिकों को छोड़ते हैं, जो सीधे कार्बन और नाइट्रोजन खनिजीकरण को प्रभावित करते हैं। नेमाटोड मृदा में पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मृदा में 19 प्रतिशत तक घुलनशील नाइट्रोजन नेमाटोड उत्सर्जन के माध्यम से प्राप्त हो सकता है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि नेमाटोड (कार्बन:नाइट्रोजन अनुपात 8-12) में उनके द्वारा खाए जाने वाले बैक्टीरिया (कार्बन:नाइट्रोजन अनुपात 3-4) की तुलना में नाइट्रोजन की मात्रा कम होती है। हाल ही में खेती की गई फसल की तुलना में, 1.5 वर्ष से परती पड़े खेत में नेमाटोड और मृदा के पोषक तत्वों के बीच अधिक स्पष्ट रूप से परिभाषित सह संबंध दिखाई दिए। कई जीवाणुभक्षी प्रजातियों ने शिकारियों और सर्वाहारी का अनुसरण किया और अधिकांश मिट्टी के पोषक तत्व महत्वपूर्ण रूप से जुड़े हुए थे ($P<0.10$)। हालांकि, कवकभक्षी और शाकाहारी समूहों में जेनेरा के बीच कुछ ही महत्वपूर्ण संबंध थे।

अनुसूचित जाति उपयोजना से सशक्तिकरण

एच.के. दे और **ए. साहा**

"भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-केंद्रीय मीठाजल जीवपालन अनुसंधान संस्थान (भाकृअनुप-सीफा) ने वर्ष 2018-2024 के दौरान अनुसूचित जाति उपयोजना के तहत आठ राज्यों में जलकृषि, मुर्गीपालन, मशरूम खेती और पोषण-वाटिका जैसी गतिविधियों के माध्यम से 5000 से अधिक किसान परिवारों को सशक्त बनाया। लगभग 12,000 प्रतिभागियों को वैज्ञानिक जल कृषि तकनीकों पर प्रशिक्षण और जागरूकता कार्यक्रमों से लाभान्वित किया गया, जिसमें विशेष रूप से महिलाओं और स्वयं सहायता समूहों को संसाधन उपलब्ध करवाए गए। भूमिहीन और गरीबी रेखा से नीचे के लोगों के उत्थान हेतु, किसान ज्ञान हस्तांतरण को बढ़ावा देने के लिए फील्ड-स्कूल पद्धति का उपयोग किया गया।"

अनुसूचित जाति उपयोजना एक ऐसी परियोजना है जिसके माध्यम से अनुसूचित जाति के समुदायों को विशिष्ट वित्तीय एवं भौतिक लाभ प्रदान किया जाता है। अनुसूचित जाति के समुदायों के पारिवारिक और आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देना इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य है।

भाकृअनुप-सीफा का महत्वपूर्ण योगदान

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-केंद्रीय मीठा जलजीव पालन अनुसंधान संस्थान (सीफा), भुबनेश्वर ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। अनुसूचित जाति उपयोजना ने भाकृअनुप-सीफा की तकनीकी सुधारों और उन्नत सामग्री वितरण के माध्यम से आठ राज्यों-आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल और ओडिशा में अनुसूचित जाति समुदायों को लाभ पहुंचाया है। वर्ष 2018-2024 के दौरान, भाकृअनुप-सीफा ने अनुसूचित जाति के किसान परिवारों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किए, जो जलकृषि और उससे संबंधित गतिविधियों जैसे कि मुर्गीपालन, मशरूम खेती, मधुमक्खी पालन और पोषण वाटिका पर केंद्रित थे। इन

वैज्ञानिक परामर्श से कौशल विकास

भाकृअनुप-केन्द्रीय मीठाजल जीवपालन अनुसंधान संस्थान, कौशल्यागंगा, भुबनेश्वर-751002 (ओडिशा)

कौशल ज्ञान से मत्स्यपालकों का उत्थान

सारणी 1. अनुसूचित जाति उपयोजना के तहत क्षमता निर्माण कार्यक्रम और अन्य गतिविधियां

राज्य	जिले	कुल प्रतिभागी संख्या
आंध्र प्रदेश और तेलंगाना	बापतला, गुंटूर, कृष्णा, खम्मम, सूर्यपेट	1336
कर्नाटक और तमिलनाडु	चिकबल्लापुर, मैसूर, मधुरांथकम	477
ओडिशा	अंगुल, बालेश्वर, भद्रक, बौध, कटक, ढेंकानल, जगतसिंहपुर, जाजपुर, कंधमाल, केन्द्रापड़ा, केन्दुझर, खुर्दा, कोरापुट, मयूरभंज, पुरी, संबलपुर	6496
पंजाब	भटिंडा, फरीदकोट, मंसा, श्री मुक्तसर साहिब, बिकानेर, हनुमानगढ़	778
पश्चिम बंगाल	कूच बिहार II, दक्षिण दिनाजपुर, जलपाईगुड़ी, नदिआ, उत्तर 24 परगना, दक्षिण 24 परगना, उत्तर दिनाजपुर, मालदा	2294

किसानों का सशक्तिकरण

अनुसूचित जाति उपयोजना का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि अनुसूचित जाति समुदायों को लक्षित वित्तीय और भौतिक सहायता प्राप्त हो। इस योजना का प्राथमिक लक्ष्य आवश्यक संसाधन उपलब्ध करवाकर और स्थानीय आर्थिक गतिविधियों तथा व्यवसायों के बीच अंतर को दूर करके, परिवार-आधारित आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना है। इस परियोजना के माध्यम से सामुदायिक और दूसरे अन्य तालाबों को मछलीपालन और बीज उत्पादन प्रदर्शन के लिए चयन किया गया। भूमिहीन महिलाओं और असहाय व्यक्तियों को मुर्गीपालन और पशुपालन संबंधित उपक्रम दिए गए, जिसमें प्रशिक्षण, भ्रमण और तकनीकी सहायताभी प्रदान की गई। कार्यशालाओं, तालाब स्थल प्रदर्शन और मीडिया प्रचार ने परिणामों को साझा करने और सफलता की कहानियों का प्रलेखन करने में मदद की।

किसानों को उन्नत सामग्री का वितरण

सुधारों का उद्देश्य भूमिहीन और कमजोर आबादी, जिसमें गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोग भी शामिल थे, को सशक्त कर उनका उत्थान करना था। भाकृअनुप-सीफा ने इन आठ राज्यों में लगभग 5000 किसान परिवारों तक पहुंच बनाई और लगभग 12000 प्रतिभागियों को लाभान्वित किया। भाकृअनुप-सीफा ने कई प्रशिक्षण और जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए, जो चयनित राज्यों में वैज्ञानिक जलकृषि प्रथाओं और अन्य आजीविका-सुधार गतिविधियों पर केंद्रित थे। मुख्य पहलों में मछली पालन, सजावटी मछली पालन और लवण प्रभावित

सारणी 2. राज्य/जिलावार प्रौद्योगिकी प्रदर्शन

राज्य	मिश्रित मछली पालन	कार्प बीज पालन	सजावटी मछली पालन	पोल्ट्री, पशुपालन और बागवानी	कुल लाभार्थी
आंध्र प्रदेश और तेलंगाना	गुंटूर, कृष्णा, बापतला, सूर्यपेट, खम्मम		कृष्णा, बापतला		1664
पंजाब और राजस्थान	श्री मुक्तसर साहिब, भटिंडा, फरीदकोट, हनुमानगढ़	बिकानेर	मंसा		738
कर्नाटक और तमिलनाडु	मधुरांथकम, मैसूर, चिकबल्लापुर			मधुरांथकम, मैसूर	527
पश्चिम बंगाल	दक्षिण 24 परगना, उत्तर 24 परगना, नदियां		जलपाईगुड़ी	दक्षिण 24 परगना, कूच बिहार	1688
ओडिशा	पुरी, खोरद्धा, कंधमाल, ढेंकानल, केंद्रपाड़ा, कटक, बौध, कोरापुट, संबलपुर, भद्रक, बालासोर, अंगुल, मयूरभंज, जगतसिंहपुर, जाजपुर, केंदूझर	ढेंकानल		केंद्रपाड़ा	8042

क्षेत्रों में जलीय कृषि पर प्रशिक्षण कार्यक्रम शामिल थे। महिलाओं को शामिल करने के लिए विशेष प्रयास किए गए, जिसमें स्वयं सहायता समूहों को मशरूम शेड, ऑक्सीजन सिलेंडर और सजावटी मछली टैंक जैसे महत्वपूर्ण संसाधन प्रदान किए गए। इसके अतिरिक्त, किसान से किसान ज्ञान हस्तांतरण को प्रोत्साहित करने के लिए फील्ड-स्कूल के तरीके का उपयोग किया गया।

किसान मेलों, प्रदर्शनियों और वैज्ञानिक बैठकों जैसे प्रमुख कार्यक्रमों का आयोजन किया गया, जिसमें सरकारी विभागों, अनुसंधान संस्थानों और स्थानीय समुदायों की भागीदारी रही। इन पहलों ने अनुसूचित समुदायों को वैज्ञानिक कृषि पद्धतियों को अपनाने के लिये प्रोत्साहित किया, जिससे उनकी आजीविका और सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। उत्तर बंगा कृषि विश्वविद्यालय पुंदिबाड़ी, रामकृष्ण मिशन विवेकानंद शैक्षिक एवं अनुसंधान संस्थान, बेलूर, कई कृषि विज्ञान केंद्रों, राज्य मछली पालन विभागों और अन्य भागीदारों के उल्लेखनीय सहयोग ने कार्यान्वयन प्रक्रिया को और अधिक मजबूत किया।

प्रशिक्षण और जागरूकता कार्यक्रम

आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल और ओडिशा में 11,381 किसानों और महिला किसानों की भागीदारी के साथ कुल 101 प्रशिक्षण-सह-जागरूकता कार्यक्रम, पांच कार्यशाला-सह-प्रदर्शनी कार्यक्रम और तीन भ्रमण आयोजित किये गए। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य किसानों को वैज्ञानिक मछली पालन तकनीक, जलीय कृषि और संबंधित प्रथाओं के विभिन्न पहलुओं में शिक्षित और प्रशिक्षित करना था।

जल कृषि में महिलाओं की अहम भूमिका

संसाधन सहायता कार्यक्रम

लगभग 250 संसाधन सहायता कार्यक्रम किये गये, जिसमें चूना, जाल, मछली आहार, मछली बीज, पानी के पंप, मशरूम शेल्टर, मुर्गी आहार, दवाएं, बत्तख और मुर्गी के चूजे, ऑक्सीजन टैंक, एफ.आर.पी हैचरी और बायो-फ्लॉक सेटअप जैसी आवश्यक संसाधन सामग्री 10,000 प्राप्तकर्ताओं को प्रदान की गई थी। अनुसूचित समुदाय किसानों को जलीय कृषि संचालन शुरू करने या सुधारने में सक्षम बनाना, इस सहायता का उद्देश्य था।

पानी और मृदा परीक्षण

जलीय पर्यावरण और मृदा स्वास्थ्य की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए 250 लाभार्थियों की उपस्थिति में पानी के नमूनों और मृदा का परीक्षण किया गया।

एक्वाकल्चर फील्ड स्कूल की स्थापना

एक्वाकल्चर फील्ड स्कूल एक गैर-आवासीय शैक्षिक संस्था है, जिसका उद्देश्य एक्वाकल्चर कृषि समुदाय की निर्णय लेने की क्षमता को बढ़ाना है। एक खोज-आधारित दृष्टिकोण के माध्यम से, मछली पालकों को इस भागीदारिता आधारित विस्तार रणनीति में उन एक्वाकल्चर उत्पादन तकनीकों को चयन करने का अवसर दिया जाता है, जिन्हें वे उपयोग में लाना चाहते हैं। वर्ष 2018-2024 के दौरान, कई जलीय कृषि सुविधाओं की स्थापना की गई: तमिलनाडु में दो एक्वाकल्चर फील्ड स्कूल, पश्चिम बंगाल में 6 एक्वाकल्चर फील्ड स्कूल, ओडिशा में एक एक्वाकल्चर फील्ड स्कूल, जो 1000 किसानों को ज्ञान प्रदान करता है।

सारणी 3. भाकृअनुप-सीफा द्वारा एक्वाकल्चर फील्ड स्कूल की स्थापना

राज्य	जिला	स्थान	ऑपरेटर किसान का नाम	स्थापना वर्ष
ओडिशा	कटक	कोचिला न्यूआगांव, दासा साहि	श्री राजेश रंजन महापात्रा	2020
पश्चिम बंगाल	दक्षिण 24 परगना	सोनारपुर	श्रीमती सुनीति मंडल	2021
पश्चिम बंगाल	जलपाईगुड़ी	मलकानिहाट	श्री भागीरथी राय	2021
पश्चिम बंगाल	कूचबिहार	चाट एलाजन	श्री संजय किर्तनिया	2021
पश्चिम बंगाल	उत्तर दिनाजपुर	फतेहपुर	स्क. स्रीकुल आलम	2021
पश्चिम बंगाल	दक्षिण दिनाजपुर	दुमुथा फरिदपुर	श्री बिप्लब चंद्र राय	2021
पश्चिम बंगाल	दक्षिण 24 परगना	गोरणबोसे	श्रीमती मामोनी कर्मकार	2021
तमिलनाडु	मदुरै	कांचरामपेट्टई	श्री विजयकुमार	2022
तमिलनाडु	कडलूर	सेथियाथोपे	श्री पुगजेन्दी	2022

मेला और प्रदर्शनियां

दो मछली पालन मेले, दो किसान मेले-सह-प्रदर्शनी और एक किसान गोष्ठी का आयोजन किया गया था, जिसमें 1090 लाभार्थियों ने भाग लिया। इन्होंने संभवत: जलीय कृषि में वैज्ञानिक तकनीकी के बारे में नवीनतम विकासों के बारे में जानने, अपने उत्पादों को प्रदर्शित करने और उद्योग में अन्य हितधारकों के साथ चर्चा करने का अवसर प्राप्त किया। ये गतिविधियां सामूहिक रूप से जलीय कृषि और संबंधित प्रयासों को बढ़ावा देने और समर्थन देने का एक संगठित प्रयास दर्शाती हैं। इसका उद्देश्य इस क्षेत्र में उत्पादकता, स्थिरता और आजीविका के अवसरों को बढ़ाना है। वर्ष 2018-2024 के दौरान लगभग 12,000 प्रतिभागियों ने इन कार्यक्रमों में भाग लिया और लाभ उठाया।

गन्ना-मक्का अंत:फसल प्रणाली

एस.एल. जाट, मनीष ककरालिया, पशुपत वसमतकर, रामनिवास और **एच.एस. जाट**

भारत में गन्ने की एकल खेती अकुशल संसाधन उपयोग और विलंबित आर्थिक लाभ जैसी चुनौतियां प्रस्तुत करती है। इनसे निपटने के लिए, गन्ना-मक्का अंत:फसल प्रणाली एक स्थायी समाधान प्रदान करती है, जो संसाधन दक्षता और किसान की आय को बढ़ाने में सहायक है। यह प्रणाली गन्ने की प्रारंभिक धीमी वृद्धि अवधि का उपयोग करते हुए फसल मक्का के छोटे विकास चक्र का लाभ उठाती है और भूमि तथा जल उपयोग में सुधार करती है। इसके अलावा, यह भारत में दोहरी-फीड डिस्टिलरी के लिए फीडस्टॉक के रूप में मक्का अनाज प्रदान करके बायोएथेनॉल उत्पादन के लिए भी उपयोगी है। हाल ही में खेतों पर किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि गन्ना-मक्का अंत:फसल ने गन्ने की एकल फसल (150 टन/हैक्टर) की तुलना में 28 प्रतिशत अधिक गन्ना समतुल्य उपज प्राप्त की। इसके साथ ही गन्ने की एकल फसल की तुलना में शुद्ध लाभ में भी उल्लेखनीय वृद्धि की है। इस प्रकार, गन्ना-मक्का अंत:फसल प्रणाली खेत की लाभप्रदता, संसाधन उपयोग दक्षता को बढ़ाने एवं स्थायी कृषि और बायोएथेनॉल उत्पादन में योगदान करने के लिए एक व्यवहार्य रणनीति प्रस्तुत करती है।

गन्ना (*सकरम ऑफिसिनारम* एल.) भारत की सबसे महत्वपूर्ण व्यावसायिक फसलों में से एक है। हालांकि, इसे एकल फसल के रूप में उगाने से कई चुनौतियां आती हैं, जैसे कि इसकी धीमी प्रारंभिक वृद्धि के दौरान संसाधनों का अप्रभावी उपयोग, पानी की उच्च मांग और इसकी लंबी फसल अवधि के कारण आर्थिक लाभ में देरी होती है। इसके अलावा, गन्ने की फसल से किसानों को लगभग 10 से 15 महीनों के बाद ही आय प्राप्त होती है। इससे किसानों को दैनिक खर्चों को पूरा करने में कठिनाई हो सकती है।

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना-141008 (पंजाब)

गन्ने की एकल फसल (मोनो-क्रॉपिंग) से कीटों और रोगों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ जाती है, जिससे उत्पादकता, लाभप्रदता, संसाधन उपयोग दक्षता और समग्र स्थिरता प्रभावित होती है। इसके अलावा, गन्ना एक जल-गहन फसल है, जो भारत के कई क्षेत्रों में पहले से ही सीमित जल संसाधनों पर दबाव बढ़ा देती है। इसके साथ ही, गन्ना आधारित उद्योगों के पूरे वर्ष सुचारू रूप से संचालित न होने से फसल पारिस्थितिकी तंत्र पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। हाल ही में, सरकार की स्वच्छ ईंधन पहल और सहयोग के कारण गन्ना उत्पादक क्षेत्रों में दोहरी फीड आधारित एथेनॉल उत्पादन संयंत्र स्थापित किए गए हैं।

दोहरी फीड डिस्टिलरियों में गन्ना और उसके उप-उत्पाद (मोलासेस) के अलावा प्रमुख रूप से मक्का का उपयोग बायोएथेनॉल उत्पादन के लिए किया जा रहा है, जिसे सरकार के एथेनॉल मिश्रित पेट्रोल कार्यक्रम में इस्तेमाल किया जा रहा है। इस प्रकार, ये डिस्टिलरियां देश में गन्ना पारिस्थितिकी तंत्र की समग्र स्थिरता के लिए तेजी से महत्वपूर्ण होती जा रही हैं। हालांकि, फीडस्टॉक के रूप में मक्का अनाज की उपलब्धता एक गंभीर चुनौती बनी हुई है, क्योंकि मक्का उत्पादन के लिए पर्याप्त क्षेत्र उपलब्ध नहीं है। इन सीमाओं को दूर करने के लिए, गन्ने को अंत:फसल के रूप में कम अवधि वाली फसलों जैसे मक्का (*जिया मेज* एल.) की खेती एक आशाजनक रणनीति हो सकती है। इससे भूमि और जल संसाधनों की दक्षता में वृद्धि, मृदा के स्वास्थ्य में सुधार और किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है। मक्का 90

उपज और लाभ

उपज के संदर्भ में, अंत:फसल (192 टन/हैक्टर) ने गन्ने की एकल फसल (150 टन/हैक्टर) की तुलना में 28 प्रतिशत अधिक गन्ना समतुल्य उपज प्राप्त की गई। गन्ना-मक्का अंत:फसल से 575×103 रुपये/हैक्टर का उच्चतम शुद्ध लाभ दर्ज किया है, जो गन्ने की एकल फसल से 125×103 रुपये/हैक्टर अधिक है। इससे 1.0 लाख से 1.5 लाख रुपये/हैक्टर तक की बचत हुई। इस प्रकार गन्ने की एकल फसल प्रणाली की तुलना में गन्ना-मक्का अंत:फसल प्रणाली का एक महत्वपूर्ण आर्थिक लाभ है, जो इसे किसानों के लिए अधिक उत्पादक और लाभदायक विकल्प बनाती है।

से 120 दिनों में पक जाता है इसलिए, गन्ने की प्रारंभिक धीमी वृद्धि अवधि का उपयोग मक्का की अंत:फसल खेती के लिए प्रभावी रूप से किया जा सकता है।

अंत:फसल के लिए प्रबंधन पद्धतियां

जलवायु आवश्यकताएं

गन्ना उष्णकटिबंधीय जलवायु के लिए सबसे उपयुक्त फसल है। इसे उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। दूसरी ओर, मक्का के लिए 9 से 46 डिग्री सेल्सियस तक का तापमान उपयुक्त रहता है, जिसमें आदर्श तापमान लगभग 34 डिग्री सेल्सियस होता है। हालांकि, 32 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान के संपर्क में आने के साथ-साथ पाला पड़ने से भी प्रजनन अवधि के दौरान पैदावार में कमी आ जाती है।

अंकुरण और अंकुर वृद्धि के लिए मृदा का आदर्श तापमान 26 से 30 डिग्री सेल्सियस के बीच होना चाहिए। दक्षिण भारत में जुलाई-अगस्त या किसी भी मौसम में लगाया गया गन्ना तथा उत्तरी भारत में वसंत ऋतु में लगाया गया गन्ना मक्का के साथ सफलतापूर्वक अंत:फसल के रूप में उगाया जा सकता है। इसके अलावा, पेड़ी गन्ना फसल को भी मक्कोके साथ सफलतापूर्वक अंत:फसल में उगाया जा सकता है।

अंत:फसल प्रणाली में विभिन्न विकास चरणों में गन्ना और मक्का की फसलें

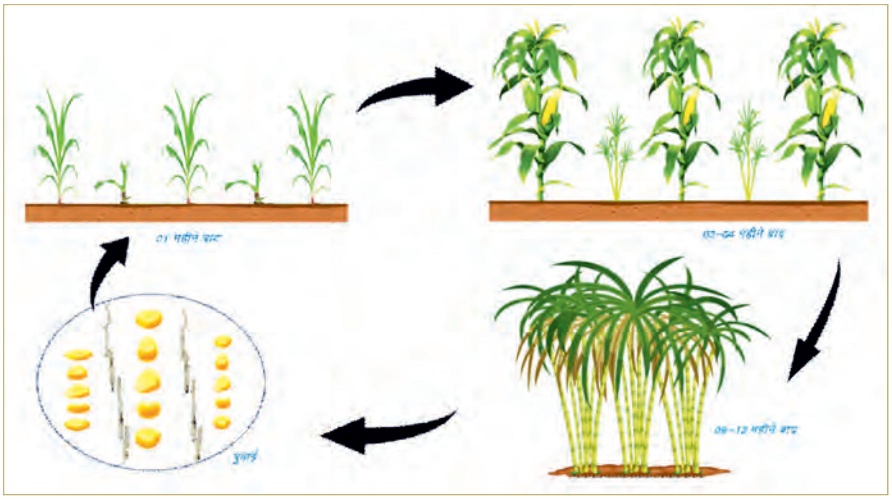

गन्ना-मक्का अंत:फसल प्रणाली में गन्ना और मक्का फसलों का फसल चक्र

मृदा का प्रकार

गन्ना और मक्का दोनों फसलें रेतीली दोमट से लेकर चिकनी दोमट तक विभिन्न प्रकार की मृदा के लिए अनुकूल होती हैं। इससे ये फसलें विभिन्न कृषि-जलवायु परिस्थितियों में उगाने के लिए उपयुक्त बनती हैं। हालांकि, मक्का जलभराव और पानी की कमी के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होता है, इसलिए इसकी वृद्धि और उत्पादकता के लिए सटीक जल प्रबंधन आवश्यक है। वहीं, उच्च कार्बनिक पदार्थ, उच्च जल धारण क्षमता और एक तटस्थ पी-एच मान (6.5-7.5) वाली मृदा दोनों फसलों की अधिक उत्पादक वृद्धि के लिए आदर्श होती है।

कृषि क्रियाएं

- **बुआई का समय:** उत्तरी भारत में गन्ने की बुआई के लिए मध्य फरवरी से मध्य मार्च तक का समय सबसे उपयुक्त होता है। यह भारत के विभिन्न कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्रों में वसंतकालीन मक्का की बुआई के लिए भी आदर्श समय है। दक्षिण भारत में, किसी भी समय बोया गया गन्ना मक्का की अंत:फसल के रूप में उगाया जा सकता है। जबकि पेड़ी गन्ने की फसल में, मक्का को गन्ने की मुख्य फसल की कटाई के तुरंत बाद पूरे भारत में बोया जा सकता है।
- **बीज दर:** गन्ने की बुआई के लिए प्रति हैक्टर 50 हजार तीन-आंख वाले, 37,500 चार-गूंठ वाले या 30 हजार पांच-आंख वाले टुकड़ों (सेट्स) का प्रयोग करें। हाथ से मक्का की बुआई के लिए 15 से 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से बीजों का उपयोग करें, जबकि हाथ से धकेलने वाली बीज बोने की मशीन (हैंड-पुश प्लांटर) से 15 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बीज दर उपयुक्त है।

बुआई की विधि और अंतराल

गन्ने की पंक्तियों को 75 से 100 सें.मी. की दूरी पर और 20 से 25 सें.मी. गहरी नालियों में लगाया जाना चाहिए। नालियों में गन्ने के टुकड़े रखने के बाद उन्हें 5 सें.मी. मिट्टी से ढक दें। मक्का की बुआई गन्ने की क्यारियों पर 20 से 25 सें.मी. पौधे से पौधे की दूरी पर एक साथ करनी चाहिए। यदि बुआई के दौरान नमी की स्थिति ना हो, तो तुरंत सिंचाई करें।

सारणी 1. भारत में गन्ना-मक्का अंत:फसल के लिए अनुशंसित शाकनाशी

शाकनाशी	उपयोग का समय	मात्रा (सक्रिय तत्व ग्राम/कि.ग्रा. प्रति हैक्टर)		संयोजन (ग्राम/मि.ली./कि.ग्रा./लीटर प्रति हैक्टर)		पानी में घोलने की मात्रा (लीटर)
		मक्का	गन्ना	मक्का	गन्ना	
एट्राजीन 50 प्रतिशत डब्ल्यूपी	पूर्व अंकुरण	500-1000	500-2000	1000-2000	1000-4000	500-700
टोप्रामेजोन 10 ग्राम/लीटर+एट्राजीन 300 ग्राम/लीटर एससी	अंकुरण पश्चात	766	920	2500	3000	500
हैलोसल्फ्यूरॉन मिथाइल 75 प्रतिशत प्रतिशत डब्ल्यूजी	अंकुरण पश्चात	67		90		375
मेसोट्रियोन 2.27 प्रतिशत डब्ल्यू/डब्ल्यू+एट्राजीन 22.7 प्रतिशत डब्ल्यू/डब्ल्यू एससी	अंकुरण पश्चात	865		3460		500

- **बीज उपचार:** गन्ने के बेहतर अंकुरण के लिए इसके टुकड़ों (सेट्स) को एथरेल 39 एसएल का 25 मि.ली. प्रति 100 लीटर पानी के घोल में 24 घंटे भिगोकर रखा जाता है। यदि आवश्यक हो, तो मक्का के बीज को इमिडाक्लोप्रिड/4 ग्राम/कि.ग्रा. बीज या सायनट्रानिलिप्रोल 19.8 प्रतिशत+थायमेथोक्साम 19.8 प्रतिशत का मिश्रित/6 ग्राम/कि.ग्रा. बीज के साथ उपचारित करें, ताकि फॉल आर्मीवॉर्म के संक्रमण से बचाया जा सके।

पोषक तत्व प्रबंधन

बुआई के समय, गन्ने और मक्का (मध्यम और देर से पकने वाली संकर किस्में) दोनों फसलों के लिए 50 से 75 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 50 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की पूरी मात्रा डाई-अमोनियम फॉस्फेट (डीएपी) और म्यूरेट ऑफ पोटाश (एमओपी) के माध्यम से डालें। गन्ने के लिए, नाइट्रोजन की आधी मात्रा (75 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर) अंकुरण के बाद पहली सिंचाई के साथ टॉप ड्रेसिंग या गन्ने की पंक्तियों के किनारे ड्रिल करके डालें। शेष नाइट्रोजन की मात्रा (75 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर) को मई या जून में डालें। इस समय फसल को अधिक वृद्धि के लिए अधिक नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। हालांकि, 125 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर नाइट्रोजन को दो बराबर भागों में, घुटने की ऊंचाई और रेशम बनने (टेसलिंग अवस्था) के समय जड़ों के पास डालें।

गन्ना-मक्का अंत:फसल प्रणाली में गन्ने की पंक्तियों के बीच मक्का की तैयार फसल

जल प्रबंधन

गन्ना और मक्का के लिए रिज एंड फर्रो प्रणाली में सिंचाई सबसे उपयुक्त होती है। इसमें पानी को क्यारियों में उनकी ऊंचाई के एक-तिहाई तक भरा जाता है। गन्ने और मक्के की अंत:फसल प्रणाली में आमतौर पर गन्ने के सिंचाई कार्यक्रम का पालन किया जाता है। यदि यह गन्ने की सिंचाई कार्यक्रम के साथ मेल नहीं खाती हो, तो मक्का की नमी-संवेदनशील अवस्थाएं जैसे-अंकुरण, घुटने की ऊंचाई, रेशम बनने और दाना भरने की अवस्था में नमी की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित करनी चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

- **यांत्रिक नियंत्रण:** अंत:फसल प्रणाली में खरपतवारों के प्रबंधन के लिए हाथ से चलने वाले रोटरी वीडर का उपयोग करके दो से तीन बार गुड़ाई करें।
- **रासायनिक नियंत्रण:** खरपतवारों के प्रकार, प्रतिस्पर्धा की अवधि और उनके घनत्व के आधार पर, मक्का की पैदावार में 25 से 80 प्रतिशत तक का नुकसान हो सकता है। इसलिए, गन्ना-मक्का अंत:फसल प्रणाली में खरपतवार नियंत्रण के लिए समय पर शाकनाशियों (सारणी-1) का छिड़काव किया जाना आवश्यक है।

मक्का की कटाई और प्रसंस्करण

- **कटाई:** गन्ना-मक्का अंत:फसल प्रणाली में, मक्का की कटाई पहले की जाती है, ताकि गन्ने की वृद्धि और विकास में कोई बाधा न आए। मक्का के दाने जब शारीरिक परिपक्वता प्राप्त कर लेते हैं, जो आमतौर पर दाने (कर्नेल) के आधार पर काली परत बनने से पहचाना जाता है, तब इसकी कटाई करनी चाहिए। कटाई के बाद, हरी मक्का के तनों को जमीनी स्तर से काटकर पशु के लिए चारे के रूप में उपयोग किया जा सकता है।
- **गहाई:** कटाई के बाद, मक्का के दानों को छिलकों से अलग करने के लिए यांत्रिक मक्का शेलर या थ्रेसर का उपयोग करें। मक्का के भुट्टे से दाने निकालने के बाद, दानों की नमी 12-14 प्रतिशत तक कम करना आवश्यक है। इससे भंडारण के दौरान फफूंद, कीट संक्रमण या खराब होने की आशंका को रोका जा सकता है।

गन्ना-मक्का अंत:फसल प्रणाली भूमि और जल उपयोग को अनुकूलित करने के साथ किसानों की आय बढ़ाती है और बायोएथेनॉल उत्पादन को बढ़ावा देती है। गन्ने के धीमे प्रारंभिक विकास चरण का कुशलतापूर्वक उपयोग करके, मक्का मिट्टी के स्वास्थ्य को बढ़ाता है और खरपतवार के दबाव को कम करता है। यह प्रणाली कृषि की लाभप्रदता बढ़ाने के साथ स्थिरता को भी बढ़ावा देती है। इसके अतिरिक्त भारत की स्वच्छ ईंधन पहल को मजबूत करती है। इससे यह भविष्य की कृषि के लिए एक व्यवहार्य समाधान बन जाता है। ■

कीट और रोग प्रबंधन

फसल के स्वास्थ्य को बनाए रखने और उच्च उत्पादन सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी कीट प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। मक्का में झुलसा और डाउनी मिल्ड्यू (फफूंदी), तथा गन्ने में लाल सड़न, कंडुआ और जंग को नियंत्रित करने के लिए एजोक्सिस्ट्रोबिन 18.2 प्रतिशत+डिफेनोकोनाजोल 11.4 प्रतिशत के मिश्रण का 0.03 प्रतिशत (0.3 ग्राम/लीटर) की सांद्रता पर या 0.1 प्रतिशत (1 मि.ली./लीटर पानी) के संयोजन (फॉर्मूलेशन) के साथ का छिड़काव करें। गन्ना-मक्का अंत:फसल प्रणाली में, फसलों को सामान्य कीटों से बचाने के लिए सारणी-2 में कीटनाशकों की सिफारिश की जाती है।

सारणी 2. भारत में गन्ना-मक्का अंत:फसल के लिए अनुशंसित कीटनाशक

कीटनाशक	मात्रा (सक्रिय तत्व ग्राम/कि.ग्रा. प्रति हैक्टर)		संयोजन (ग्राम/मि.ली./ कि.ग्रा./लीटर प्रति हैक्टर)		पानी में घोलने की मात्रा (लीटर)
	मक्का	गन्ना	मक्का	गन्ना	
कार्बोफ्यूरॉन 03 प्रतिशत सीजी	1000	2000	32900	65800	500
क्लोरान्ट्रानिलिप्रोल 18.50 प्रतिशत एससी	37	75-125	2000	370-620	500-1000 (गन्ना)
फ्लूबेंडियामाइड 20 प्रतिशत डब्ल्यूजी	50	75	250	370	500 (मक्का)-750

अगस्त के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, कपिला शेखावत, अंजली पटेल, एस.एस. राठौर और **आदित्य सिंह**

"अगस्त अर्थात् श्रावण-भाद्रपद का माह खरीफ फसलों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। धान, मक्का, ज्वार, बाजरा आदि मानसून या खरीफ फसलों की खेती का देश के खाद्यान्न उत्पादन में आधे से भी अधिक का योगदान है। ये सभी फसलें मानसून के आगमन पर निर्भर करती हैं। अत: सघन खेती के उन्नत उपायों के अलावा बारानी खेती का उचित प्रबंधन करना बहुत ही आवश्यक है। इसके अन्तर्गत खरीफ फसलों जैसे मक्का, ज्वार, बाजरा, अरहर, मूंग, उड़द, ग्वार, मोठ, तिल आदि फसलों की बुआई के लिए कम सिंचाई वाली उन्नत प्रजातियों का चयन बहुत ही महत्वपूर्ण है। उचित समय पर बुआई, क्रांतिक अवस्थाओं पर सिंचाई, बूंद-बूंद पानी का दक्ष उपयोग, पूसा हाइड्रोजैल प्रयोग द्वारा कम पानी में फसल प्रबंधन, वाष्पीकरण कम करने हेतु पलवारों का प्रयोग आदि कृषि क्रियायें वर्षा आधारित क्षेत्रों में फसल उत्पादकता बढ़ाने में सहायक हैं। उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर इस अंक में खरीफ फसलों-अरहर, मूंग, उड़द, मूंगफली, तिल, सोयाबीन, सूरजमुखी, धान, ज्वार, बाजरा, मक्का, कपास, गन्ना और चारा एवं सब्जी फसलों (कद्दूवर्गीय, भिण्डी, बैंगन, मिर्च, परवल, टमाटर, हरी प्याज, गाजर, बेबीकॉर्न, मिर्च, ग्वार, पालक, अगेती मूली, फूलगोभी और बंदगोभी) के उत्पादन की आधुनिक तकनीक एवं उन्नत सस्य विधियां जैसे सामयिक विषयों को सम्मिलित किया गया है। यह समय बागवानी (अमरूद, आम, कटहल, आंवला, पपीता, केला, नीबू, बेर, जामुन, लीची, आंवला) एवं पुष्प (गुलाब, रजनीगंधा, ग्लैडियोलस) फसलों की खड़ी फसल में भी सस्य प्रबंधन के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान कर फसल की उत्तम बढ़वार और उपज को सुनिश्चित करता है। किसान इस समय क्या कार्य करें जिससे उन्हें अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हों, इसका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।"

धान की फसल के लिए सिचांई की पर्याप्त सुविधा का होना आवश्यक है। जल की कुछ क्रांतिक अवस्थाओं जैसे-कल्ले फूटते समय, फूल निकलते समय, बाली निकलते समय तथा दाना भरते समय खेत में 5-6 सें.मी. पानी खड़ा रहना लाभकारी पाया गया है। इनमें फूल खिलने की अवस्था पानी के लिए अति संवेदनशील है।

सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012

अनुसंधानों में यह पाया गया है कि धान की अधिक उपज लेने के लिए लगातार पानी भरा रहना आवश्यक नहीं है। इसके लिए खेत की सतह से पानी अदृश्य होने के एक दिन बाद 5-7 सें.मी. सिंचाई करना उपयुक्त होता है। खेत में पानी रहने से फॉस्फोरस, मैंग्नीज तथा आयरन जैसे पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती है और खरपतवार भी कम निकलते हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि कल्ले निकलते समय अधिक देर तक 5 सें.मी. से अधिक पानी धान के खेत में भरा रहना भी हानिकारक होता है।

अत: जिन क्षेत्रों में पानी भरा रहता हो, वहां जल निकासी का प्रबंध करें। कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण कई बार धान की रोपाई देर से की जाती है। कई बार वर्षा बहुत अधिक हो जाने या वर्षा का आगमन देर से होने वाली परिस्थितियों में समय पर रोपाई सम्भव नहीं हो पाती है। ऐसी दशा में कुछ विशेष सस्य क्रियाओं को अपनाकर पुरानी

पौध के प्रयोग से धान की अच्छी पैदावार प्राप्त की जा सकती है, जैसे-रोपाई की दूरी घटा देनी चाहिए (20×10 एवं 15×10 सें.मी.), जिससे प्रति इकाई पौधों की संख्या बढ़ जाये और प्रति स्थान पर 3-5 पौधों की रोपाई करें।

धान की देर से पकने वाली प्रजातियों की रोपाई इस माह बंद कर दें, हालांकि जिन जगहों पर पौधे मर गये हों, वहां उसी प्रजाति के नये पौधे दोबारा रोप सकते हैं। इसके साथ ही खेत में पानी का स्तर 3-4 सें.मी. बनाए रखें।

- **पोषक तत्व प्रबंधन:** धान की फसल में रोपाई के 25-30 दिनों बाद कल्ले निकलते समय अधिक उपज देने वाली प्रजातियों में 65 कि.ग्रा. यूरिया (30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन) एवं सुगंधित प्रजातियों में 33 कि.ग्रा. यूरिया (15 कि.ग्रा. नाइट्रोजन) प्रति हैक्टर तथा नाइट्रोजन की इतनी ही मात्रा की दूसरी एवं अन्तिम टॉप ड्रेसिंग रोपाई के 50-55 दिनों बाद पुष्पण के समय करनी चाहिए। यदि खेत में जिंक की कमी के लक्षण हों, तो 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट को 0.25 प्रतिशत बुझे हुए चूने के घोल के साथ 2-3 छिड़काव 15-20 दिनों के अन्तराल पर करें। जिन क्षेत्रों में धान की सीधी बुआई की जाती है वहां यदि पौधों में लौह तत्व की कमी दिखाई दे, तो 0.5 प्रतिशत फैरस सल्फेट का घोल बनाकर 15 दिनों के अन्तराल पर दो से तीन छिड़काव करें।
- **खरपतवार नियंत्रण:** फसल की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए खरपतवारों का समय से नियंत्रण बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। रोपण के बाद 20 से 40 दिनों में खरपतवार नियंत्रण कर लेना चाहिए। धान के खेतों में खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए जल प्रबंधन हमेशा से ही एक प्रभावी और उन्नत विधि रही है। पानी भरे हुए खेत में धान के रोपण से खरपतवार की वृद्धि कम होती है। जल भराव के कारण खरपतवारों की जड़ों तक ऑक्सीजन नहीं पहुंचती। धान की फसल के लिए सारणी में शाकनाशियों की संस्तुति दी गई है।
- **रोग प्रबंधन:** धान में लगभग 30 तरह के रोग तो केवल कवकजनित हैं। फसलों की पैदावार तथा आर्थिक क्षति के दृष्टिकोण से वर्तमान में देश में मुख्य रूप से ब्लास्ट, ब्राउन स्पॉट, स्टेम रॉट, शीथ ब्लाइट तथा फुट रॉट काफी गंभीर हैं, जिनके बारे में प्रमुख जानकारियां इस प्रकार हैं:
- **बकानी रोग:** इसके लक्षणों में प्राथमिक पत्तियों का दुर्बल तथा असामान्य रूप से लम्बा होना है। फसल की परिपक्वता के समय संक्रमित पौधे सामान्य से काफी ऊंचे हल्के हरे रंग के ध्वज-पत्र युक्त लम्बे टिलर्स दर्शाते हैं। इसके साथ ही टिलर्स की संख्या प्राय: कम होती है और कुछ हफ्तों में ही नीचे से ऊपर की ओर एक के बाद दूसरी सभी पत्तियां सूख जाती हैं। संक्रमित पौधे की जड़ें सड़कर काली हो जाती हैं और उनमें दुर्गंध आने लगती है।

बकानी रोग

- **नियंत्रण:** इस रोग की रोकथाम के लिए कवकनाशियों के साथ बीजोपचार की संस्तुति की जाती है। कार्बेण्डाजिम के 0.1 प्रतिशत (1 ग्राम/लीटर पानी) घोल में बीजों को 24 घंटे भिगोयें तथा अंकुरित करके नर्सरी में बिजाई करें। रोपाई से पहले पौध का 0.1 प्रतिशत कार्बेण्डाजिम के घोल में 12 घन्टे तक उपचार भी प्रभावी पाया गया है।
- **खैरा रोग:** यह रोग जिंक की कमी से होता है, निचली पत्तियां पीली पड़नी शुरू हो जाती हैं और बाद में पत्तियों पर कत्थई रंग के छिटकवां धब्बे उभरने लगते हैं और पौधों की वृद्धि रुक जाती है।

सारणी: धान की फसल में रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण

शाकनाशी	मात्रा (ग्राम उत्पाद/हैक्टर)	प्रयोग का समय	खरपतवार नियंत्रण
बिस्पाइरीबैक सोडियम (नोमिनी गोल्ड)	20-30	रोपाई या बुआई के 15-25 दिनों बाद	मोथा तथा चौड़ी पत्ते वाले खरपतवारों के नियंत्रण के लिये
पाइराजोसल्फ्यूरॉन इथाइल 10 डब्ल्यू.पी.	200	रोपाई या बुआई के 3 दिनों बाद	घास एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
पेण्डीमेथिलीन	1000-1500	रोपाई या बुआई के 3-4 दिनों बाद	घास, मोथा एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
प्रेटिलाक्लोर	500-1000	रोपाई या बुआई के 3-4 दिनों बाद	घास, मोथा एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
ब्यूटाक्लोर	1500-2000	रोपाई या बुआई के 3-4 दिनों बाद	घास कुल के खरपतवार
एनिलोफॉस	500-600	रोपाई या बुआई के 3-4 दिनों बाद	घास एवं मोथा कुल के खरपतवार
बैंथियोकार्ब	1000-1500	रोपाई या बुआई के 3-4 दिनों बाद	घास कुल के खरपतवार
ऑक्साडायजॉन	750-1000	रोपाई या बुआई के 3-4 दिनों बाद	घास, मोथा एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
ऑक्सीफ्लोरफेन	150-250	रोपाई या बुआई के 3-4 दिनों बाद	घास, मोथा एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
क्लोरिम्यूरॉन + मैटसल्फ्यूरॉन	20	रोपाई या बुआई के 25-30 दिनों बाद	चौड़ी पत्ती वाले एवं मोथा कुल के खरपतवार
फेनाक्जाप्रॉप इथाइल	60-70	रोपाई या बुआई के 20-25 दिनों बाद	संकरी पत्ती वाले खरपतवार विशेषकर सांवा
इथॉक्सिसल्फ्यूरॉन 15 प्रतिशत डब्ल्यू.डी.जी.	100		मोथा खरपतवार

खैरा रोग

- **नियंत्रण:** रोकथाम के लिए 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर की दर से रोपाई से पहले खेत की तैयारी के समय डालना चाहिये। 5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट तथा 2.5 कि.ग्रा. चूना 600-700 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर छिड़काव करें।
- **पत्ती झुलसा रोग:** पौधे की छोटी अवस्था से लेकर परिपक्व होने तक यह रोग कभी भी हो सकता है। इसके प्रकोप से पत्तियों के किनारे ऊपरी भाग से शुरू होकर मध्य भाग तक सूखने लगते हैं। सूखे पीले पत्ते के साथ-साथ राख के रंग के चकत्ते भी दिखाई देते हैं, बालियां दानारहित रह जाती हैं।
- **नियंत्रण:** रोकथाम के लिये 74 ग्राम एग्रीमाइसीन-100 और 500 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (फाइटोलॉन)/ ब्लाइटॉक्स-50/ क्यूप्राविट को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से 3-4 बार 10 दिनों के अन्तराल से छिड़काव करें। स्ट्रेप्टोमाइसीन/एग्रामाइसीन से बीज को उपचारित करके बोयें। इस रोग के लगने पर नाइट्रोजन की मात्रा कम कर देनी चाहिये।

झुलसा या पर्ण अंगमारी

- **ब्लास्ट या झोंका रोग:** यह रोग फफूंद से फैलता है। पौधे के सभी भाग इससे प्रभावित होते हैं। इस रोग से प्रभावित पत्तियों पर भूरे धब्बे, कत्थई रंग की एवं बीच वाला भाग राख के रंग का हो जाता है। फलस्वरूप बाली आधार से मुड़कर लटक जाती है एवं दाने का भराव भी पूरा नहीं हो पाता। देर से रोपाई करने पर झोंका रोग के लगने की आशंका बढ़ जाती है।
- **नियंत्रण:** इसके लिए बीज को कार्बेण्डाजिम एवं थीरम (1:1) 3 ग्राम/कि.ग्रा. या की दर से बीजोपचार करना चाहिए। कार्बेण्डाजिम (50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.) 500 ग्राम या 500 ग्राम ट्राइसायक्लेजोल या एडीफेनफॉस (50 प्रतिशत ई.सी.) 500 मि.ली. या हेक्साकोनाजोल (5.0 प्रतिशत ई.सी.) 1.0 लीटर या मैंकोजेब (75 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.) 2.0 कि.ग्रा. या जिनेब (75 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.) 2.0 कि.ग्रा. या मैंकोजेब (63 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.) 750 ग्राम या आइसोप्रोथपलीन (40 प्रतिशत ई.सी.) 750 मि.ली. दवा 500-750 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। कार्बेण्डाजिम का 0.1 प्रतिशत की दर से दूसरा छिड़काव कल्ले फूटते समय, तीसरा छिड़काव बालियां निकलते समय ग्रीवा संक्रमण रोकने के लिए करना चाहिए।

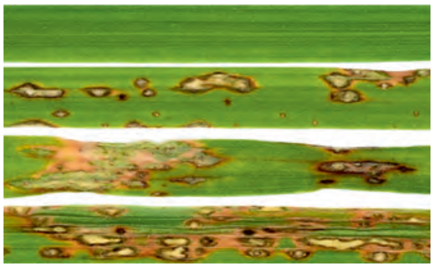

ब्लास्ट या झोंका रोग

- **झुलसा या पर्ण अंगमारी:** यह रोग जीवाणु द्वारा होता है। पौधों की छोटी अवस्था से लेकर परिपक्व अवस्था तक यह रोग कभी भी हो सकता है। इस रोग में पत्तियों के किनारे ऊपरी भाग से शुरू होकर मध्य भाग तक सूखने लगते हैं। सूखे पीले पत्तों के साथ-साथ राख के रंग के चकत्ते भी दिखाई देते हैं। पत्तों पर जीवाणु के रिसाव से छोटी-छोटी बूंदे नजर आती हैं तथा पौधों में शिथिलता आ जाती है, अंतत: बालियां दानों से रहित रह जाती हैं।

झुलसा या जीवाणु पर्ण अंगमारी रोग

- **नियंत्रण:** इस रोग के लगने की अवस्था में नाइट्रोजन का प्रयोग कम कर दें। जिस खेत में रोग लगा हो उसका पानी दूसरे खेत में न जाने दें। इसके साथ ही 74 ग्राम एग्रीमाइसीन-100 और 500 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (फाइटोलान/ब्लाइटॉक्स-50 प्रति क्यूप्राविट) को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से तीन-चार बार 10 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त 15 ग्राम स्ट्रेप्टोमाइसिन सल्फेट (90 प्रतिशत) या 15 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन या टेट्रासाक्लिन हाइड्रोक्लोराइड 10 प्रतिशत को 500 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.) के साथ मिलाकर प्रति हैक्टर 500-750 लीटर पानी में घोल बनाकर 10-12 दिनों के अंतराल पर 2-3 बार छिड़काव करना चाहिए।
- फसलों में इस रोग से बचाव के लिए रोग प्रतिरोधी प्रजातियों जैसे अजय, आईआर-42, आईआर-64 तथा स्वर्णा इत्यादि की खेती काफी सर्वोत्तम तरीका है।
- **आवरण झुलसा (शीथ ब्लाइट):** यह रोग फफूंद द्वारा होता है। पत्ती के शीथ पर 2-3 सें.मी. लम्बे

आवरण झुलसा (शीथ ब्लाइट)

हरे से भूरे रंग के धब्बे पड़ते हैं, जो बाद में भूसे के रंग के हो जाते हैं। धब्बों के चारों तरफ बैंगनी रंग की पतली धारी बन जाती है।

- **नियंत्रणः** इसके लिए कार्बेण्डाजिम (50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.) 500 ग्राम या थायोफिनेट मिथाइल (70 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.) 1.0 कि.ग्रा. कार्बेण्डाजिम (50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.) 500 ग्राम या कार्बेण्डाजिम (12 प्रतिशत)+मैंकोजेब (63 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.) 750 ग्राम या प्रोपिकोनाजोल (25 प्रतिशत ई.सी.) 500 मि.ली. या हैक्साकोनाजोल (5.0 प्रतिशत ई.सी.) 1.0 लीटर दवा 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से पर्णीय छिड़काव करें। ट्राइकोडर्मा विरिडी 1 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. 5-10 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर पर्णीय छिड़काव करें। रोगरोधी किस्में-कृष्णा सी. आर. 44-11, साकेत-1, पंकज, मानसरोवर आदि का चयन करें।
- **कीट प्रबंधनः** धान की फसल में सबसे अधिक कीट नुकसान पहुंचाते हैं। धान में कीटों के प्रकोप से उपज के साथ-साथ गुणवत्ता में भी ह्रास होता है, जिससे चावल की मांग स्थानीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में काफी घट जाती है। इसके परिणामस्वरूप किसानों को भी भारी आर्थिक नुकसान का सामना करना पड़ता है।
- **पत्ती लपेटक (लीफ फोल्डर) कीटः** इस कीट की सुंडी पौधों की कोमल पत्तियों को किनारों की तरफ से लपेटकर सुरंग सी बना लेती है और उसके अन्दर खाती रहती है। फलस्वरूप पौधों की पत्तियों का रंग उड़ जाता है और पत्तियां सूख जाती हैं। उत्तरी भारत में अगस्त से अक्टूबर तक इसके द्वारा नुकसान होता है।
- **नियंत्रणः** इसके नियंत्रण के लिये लाइट ट्रैप का प्रयोग करें। *ट्राइकोग्रामा काइलोनिस* (ट्राइकोकार्ड) 1-1.5 लाख/हैक्टर प्रति सप्ताह की दर से रोपाई के 30 दिनों उपरांत 3-4 सप्ताह तक छोड़ें। मोनोक्रोटोफॉस (36 डब्ल्यूएससी) दवा की 1.4 लीटर मात्रा 500-600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। क्विनालफॉस 25 ई.सी. 2.5 मि.ली./लीटर या क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 2.5 मि.ली./लीटर या कारटैप हाइड्रोक्लोराइड 50 एसपी 1 मि.ली./लीटर या फ्लूबैंडिमाइड 39.35 एस.सी. 1 मि.ली./5 लीटर पानी का छिड़काव करें अन्यथा दानेदार कीटनाशी कारटैप हाइड्रोक्लोराइड 4 जी 25 कि.ग्रा./हैक्टर का प्रयोग भी कर सकते हैं।

पत्ती लपेटक कीट

- **तनाछेदक (स्टेम बोरर) कीटः** इस कीट की सुंडियां ही नुकसान पहुंचाती हैं तथा वयस्क पतंगे फूलों के शहद आदि पर निर्वाह करते हैं। फसल की प्रारंभिक अवस्था में इसके प्रकोप से पौधों का मुख्य तना सूख जाता है। इसे डेड हॉर्ट या व्हाइट हैड कहते हैं तथा पकने की अवस्था पर बालियां सूखकर सफेद दिखाई देने लगती हैं। यह धारीदार गुलाबी पीला या सफेद रंग का कीट होता है।

तनाछेदक कीट

- **नियंत्रणः** प्रकाश प्रपंच के उपयोग से तनाछेदक की संख्या पर निगरानी रखें। रोपाई के 30 दिनों बाद ट्राइकोग्रामा जैपोनिकम (ट्राइकोकार्ड) 1-1.5 लाख/हैक्टर की दर से 2-6 सप्ताह तक प्रति सप्ताह छोड़ें। डाइमेक्रॉन फॉस्फामिडान (85 ई.सी.) 590 मि.ली./हैक्टर या मोनोक्रोटोफॉस (36 ई.सी.) 1.5 लीटर/हैक्टर या क्लोरोपाइरीफॉस (20 ई.सी.) 2.5 लीटर/हैक्टर 500-700 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। कार्बोफ्यूरॉन 3 जी या कारटैप हाइड्रोक्लोराइड 4 जी या फिप्रोनिल 0.3 जी 25 कि.ग्रा./हैक्टर प्रयोग करें या क्विनालफॉस 25 ई.सी. 2 मि.ली./लीटर या कारटैप हाइड्रोक्लोराइड 50 एस.पी. 1 मि.ली./लीटर का छिड़काव करें।
- **ग्रास हॉपर कीटः** इस कीट के शिशु एवं वयस्क पत्तों को इस तरह खाते हैं जैसे कि पशु चर गए हों। गर्मी में धान के खेतों की मेड़ों की खुरचाई करें, ताकि इस कीट के अंडे नष्ट हो जाएं। इस कीट की साल में एक ही पीढ़ी होती है तथा अंडे नष्ट कर देने से इसका प्रकोप काफी कम हो जाता है।

ग्रास हॉपर कीट

- **नियंत्रणः** क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 2.5 मि.ली./लीटर या क्विनालफॉस 25 ई.सी. 3 मि.ली./लीटर का छिड़काव करें अन्यथा कार्बेरिल या मिथाइल पैराथियॉन पाउडर 25-30 कि.ग्रा./हैक्टर का भुरकाव करें।
- **फुदका या मधुआ/हॉपर कीटः** फुदके भूरे काले एवं सफेद रंग के छोटे-छोटे कीट होते हैं, जिनके शिशु एवं वयस्क दोनों ही पौधों के तने एवं पर्णाच्छद से रस चूसकर फसल को हानि पहुंचाते हैं। फसल पर इस कीट की निगरानी बहुत जरूरी है। फुदके तने पर होते हैं तथा पत्तों पर नहीं दिखते। इनके प्रकोप से हरी-भरी दिखने वाली फसल अचानक झुलस जाती है।
- **नियंत्रणः** इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 1 मि.ली./3 लीटर पानी या थायोमेथोक्जम 25 डब्ल्यू पी 1 ग्राम/5

ब्राउन प्लांट हॉपर

लीटर या बीपीएमसी 50 ई.सी. 1 मि.ली./लीटर या कार्बेरिल 50 डब्ल्यू पी 2 ग्राम/लीटर या बुप्रोफेजिन 25 एस.सी. 1 मि.ली./लीटर पानी का छिड़काव करें। छिड़काव करते समय नोजल पौधों के तनों पर रखें। दानेदार कीटनाशी जैसे कार्बोफ्यूरॉन 3 जी. 25 कि.ग्रा./हैक्टर या फिप्रोनिल 0.3 जी. 25 कि.ग्रा./हैक्टर भी इस्तेमाल कर सकते हैं।

- **सैनिक कीटः** इस कीट की केवल सुंडियां ही फसल का नुकसान करती हैं, जबकि पतंगे फूलों से रस चूसते हैं। सुंडियां नर्सरी में पौध को इस तरह कुतरकर खा जाती हैं जैसे इन्हें पशुओं ने चर लिया हो। खेत में यह कीट पत्तों की मध्य शिराओं को छोड़ते हुए पूरे पत्तों को चट कर जाते हैं।
- **नियंत्रणः** प्रकाश-प्रपंच का प्रयोग कर कीटों को एकत्र कर नष्ट कर दें। क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 2.5 मि.ली./लीटर या क्विनालफॉस 25 ई.सी. 3 मि.ली./लीटर पानी का छिड़काव करें अन्यथा कार्बेरिल या मैलाथियॉन पाउडर 25-30 कि.ग्रा./हैक्टर बुरकाव करें।

ज्वार

- **विरलीकरण एवं पोषक तत्व प्रबंधनः** ज्वार की फसल में विरलीकरण (थिनिंग) करके पंक्तियों में पौधे से पौधे की दूरी 15-20 सें.मी. कर दें। विरलीकरण का कार्य करने के बाद उन्नत/संकर प्रजातियों में 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से बुआई के 30-35 दिनों बाद खड़ी फसल में छिड़क दें। असिंचित दशा में 2 प्रतिशत यूरिया का घोल बनाकर खड़ी फसल में छिड़काव करना अत्यंत लाभप्रद पाया गया है।
- **जल प्रबंधनः** ज्वार की फसल में पौधों की वृद्धि, फूल तथा दाना बनते समय सिंचाई करना आवश्यक होता है। ज्वार की फसल के लिए सिंचाई देने की चार क्रान्तिक अवस्थाएं हैं-प्रारंभिक पौध अवस्था, बाली निकलने से पहले, बाली निकलते समय एवं बालियों में दाना भरने की अवस्थायें।

ज्वार

- **खरपतवार प्रबंधनः** ज्वार की अच्छी उपज लेने के लिए बुआई के 3 सप्ताह बाद निराई-गुड़ाई करने से खरपतवार नियंत्रण के साथ-साथ भूमि में वायु का संचार होता है तथा भूमि में नमी भी सुरक्षित रहती है। यदि किसी कारणवश निराई-गुड़ाई संभव न हो, तो बुआई के तुरंत बाद एट्राजिन नामक खरपतवारनाशी की 0.75-1.0 कि.ग्रा. मात्रा 700-800 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- **पौध संरक्षणः** तना मक्खी ज्वार का एक प्रमुख कीट है। इसका प्रकोप पौधों के जमाव के लगभग 7 से 30 दिनों तक होता है। कीट की इल्लियां उगते हुए पौधों की गोफ को काट देती हैं, जिससे शुरू की अवस्था में ही पौधे सूख जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए फोरेट 10 जी या कार्बोफ्यूरॉन 3 जी को बुआई के समय 20 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से कूड़ों में डालना चाहिए।

मक्का

- **टॉप ड्रेसिंगः** मक्का में बुआई के 40-45 दिनों बाद दूसरी एवं अन्तिम टॉप ड्रेसिंग नर मंजरी निकलते समय 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से करनी चाहिए।
- **जल प्रबंधनः** मक्का में बाली बनते समय पर्याप्त नमी होनी चाहिए अन्यथा उपज 50 प्रतिशत तक कम हो जाती है। सामान्यतः यदि वर्षा की कमी हो, तो क्रांतिक अवस्थाओं जैसे, घुटने तक की ऊंचाई, नर मंजरी निकलने वाली अवस्था एवं दाना बनने की अवस्था पर एक या दो सिंचाइयां कर देनी चाहिए, जिससे उपज में गिरावट न हो। सिंचाई के साथ-साथ मक्का में जल निकास भी अत्यंत आवश्यक है। यदि मक्का मेड़ों पर बोई गई है, तो खेत के अंत में जल निकास का समुचित प्रबंधन होना चाहिए।

- **खरपतवार प्रबंधनः** खरीफ के मौसम में खरपतवारों का प्रकोप ज्यादा होता है, जिससे 50-60 प्रतिशत उपज में गिरावट आ सकती है। इसके लिए मक्का के खेत को शुरू के 45 दिनों तक खरपतवार मुक्त रखना चाहिए। खरपतवारों के प्रबंधन के लिए 2-3 निराई-गुड़ाई खुरपी या हैंड हो या हस्तचालित अथवा शक्तिचालित यंत्रों द्वारा करने से मृदा में पड़ने वाली पपड़ी भी टूट जाती है और पौधों की जड़ों को अच्छे वायु संचार से बढ़वार में मदद मिलती है। खरपतवारों के रासायनिक नियंत्रण के लिए एट्राजिन की 1-1.5 कि.ग्रा./हैक्टर मात्रा का बुआई के बाद परंतु जमाव से पहले छिड़काव करके भी नियंत्रित किया जा सकता है।
- **पौध संरक्षणः** मक्का में मेडिस टर्सिशियम लीफ ब्लाइट, डाउनी मिल्ड्यू इत्यादि रोग कभी-कभी दिखाई देते हैं। इन रोगों का प्रकोप देर से बोये जाने वाली फसल में ज्यादा पाया जाता है। जीवाणुजनित तना विगलन तथा पाइथियम वृंत गलन रोग पौधों में पुष्पण के दौरान जल-भराव की स्थिति में पाए जाते हैं। इसी प्रकार, फसल की पुष्पणोत्तर अवस्था में पुष्पणोत्तर वृंत गलन के लक्षण भी दिखाई देते हैं। इन रोगों की रोकथाम के लिए रोगरोधी प्रजातियों की समय से बुआई करनी चाहिए। इसके साथ ही लीफ ब्लॉइट की रोकथाम के लिए 2.5 कि.ग्रा./हैक्टर जिनेब को 800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। यदि रोग की रोकथाम न हो, तो 10-15 दिनों के अंतराल पर दूसरा छिड़काव अवश्य कर देना चाहिए। मक्का की फसल में पत्ती लपेटक कीट की रोकथाम के लिए क्लोरोपायरीफॉस 1.0 मि.ली. पानी में मिलाकर या इमामेक्टिन बेंजोएट 1.0 मि.ली. दवा को 4.0 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

बाजरा

- बुआई में देर होने की अवस्था में इस माह के प्रथम पखवाड़े तक इसे पूरी कर लें।
- **विरलीकरण एवं पोषक तत्व प्रबंधन:** बुआई के 15-20 दिनों बाद विरलीकरण करके कमजोर पौधों को निकालकर पंक्ति में पौधों के आपस की दूरी 10-15 सें.मी. कर लेनी चाहिए। संकर/उन्नत प्रजातियों में 85-108 कि.ग्रा. यूरिया की टॉप ड्रेसिंग प्रति हैक्टर की दर से करें।
- **जल प्रबंधन:** बाजरे की फसल में फूल आने की स्थिति में सिंचाई करना लाभप्रद होता है। वर्षा न होने की स्थिति में 2-3 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। पौधों में फुटान होते समय, बालियां निकलते समय तथा दाना बनते समय नमी की कमी नहीं होनी चाहिए। बाजरा जल प्लावन से भी प्रभावित होता है, अत: ध्यान रहे कि खेत में पानी इकट्ठा न होने पाये। खरपतवार नियंत्रण के लिए 1.0 कि.ग्रा. एट्राजिन प्रति हैक्टर की दर से 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव बुआई के बाद तथा अंकुरण से पूर्व करते हैं। इसके साथ-साथ 20-40 दिनों के अन्दर एक बार कसोले या खुरपी से खरपतवार निकाल दें।

- **पौध संरक्षण:** तनाछेदक कीट से बचाव के लिए कार्बेरिल 2.5 मि.ली./लीटर दवा का घोल 500 लीटर पानी में बनाकर या लिन्डेन 6 प्रतिशत ग्रेन्यूल अथवा कार्बोफ्यूरॉन 3 प्रतिशत ग्रेन्यूल 20 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से छिड़काव करें। 8 ट्राइकोकार्ड प्रति हैक्टर लगाने से भी इसकी रोकथाम की जा सकती है। मंडुआ, झंगोरा, रामदाना, कूट्टू मंडुआ की फसल में तनाछेदक कीट का प्रकोप होता है। इसके नियंत्रण के लिये भी क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी की 20 मि.ली. दवा प्रति नाली की दर से 15-20 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

मूंग, उड़द एवं अरहर

- **बुआई:** मूंग एवं उड़द की खेती के लिए दोमट तथा हल्की दोमट मृदा, जिसमें पानी का समुचित निकास हो, इस फसल के लिए उत्तम है। इनकी कम समय में पकने वाली प्रजातियों की बुआई जुलाई के अन्तिम सप्ताह से अगस्त के तीसरे सप्ताह तक करनी चाहिए। बुआई कूड़ में हल के पीछे करें। मूंग के लिए कूड़ से कूड़ की दूरी 30-35 सें.मी. एवं उड़द के लिए कूड़ से कूड़ की दूरी 30-45 सें.मी. रखनी चाहिए तथा बुआई के बाद तीसरे सप्ताह में घने पौधों को निकालकर पौधे की दूरी 10 सें.मी. कर देनी चाहिए।

मूंग

- **उन्नत किस्में:** मूंग की प्रजाति जैसे-सम्राट, पीडीएम-54, पीडीएम-11, नरेन्द्र मूंग-1, पन्त मूंग-1, पन्त मूंग-2, पन्त मूंग-3, पन्त मूंग-4, पन्त मूंग-5, श्वेता एवं उड़द की प्रजाति जैसे-पंत उड़द-35, पंत उड़द 31, पंत उड़द-19, पंत उड़द-40, नरेन्द्र उड़द-1 आदि प्रमुख हैं।
- **पोषक तत्व प्रबंधन:** यदि मृदा की जांच नहीं करवाई गई है, तो 10-15 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर की दर से बुआई के समय कूड़ों में डालनी चाहिए।
- **जल प्रबंधन:** मूंग, उड़द एवं अरहर में फूल आने पर मृदा में हल्की नमी बनाये रखें। इससे फूल झड़ेंगे नहीं तथा अधिक फलियां लगेंगी एवं दाने भी मोटे तथा स्वस्थ होंगे, परंतु खेतों में वर्षा का पानी खड़ा नहीं होना चाहिए।
- **खरपतवार प्रबंधन:** बुआई के प्रारंभिक 4-5 सप्ताह तक खरपतवार की समस्या अधिक रहती है। पहली सिंचाई के बाद निराई करने से खरपतवार नष्ट होने के साथ-साथ भूमि में वायु का संचार भी होता है, जो मूल ग्रन्थियों में क्रियाशील जीवाणुओं द्वारा वायुमण्डलीय नाइट्रोजन एकत्रित करने में सहायक होता है। चौड़ी पत्ती तथा घास वाले खरपतवार के रासायनिक नियंत्रण हेतु पेण्डीमेथिलीन (30 ईसी) 3.30 लीटर या एलाक्लोर 4.0 लीटर या फ्लूक्लोरोलिन (45 ईसी) 2.20 लीटर मात्रा को 800 लीटर पानी में घोलकर बुआई के तुरन्त बाद या अंकुरण से पहले छिड़काव कर देना चाहिए। अत: बुआई के 15-20 दिनों के अन्दर कसोले से निराई-गुड़ाई कर खरपतवारों को नष्ट कर देना चाहिए।
- **पौध संरक्षण:** मूंग, उड़द एवं अरहर की फसल में पीला मोजेक रोग की रोकथाम के लिए डाइमेथोएट (30 ईसी) 1.0 लीटर या मिथाइल-ओडेमिटोन (25 ईसी) की 1.0 लीटर मात्रा को 600-800 लीटर पानी में घोलकर आवश्यकतानुसार 10-15 दिनों के अन्तराल पर 2-3 छिड़काव करें या इमिडाक्लोप्रिड 0.5 मि.ली./लीटर की दर से छिड़काव करें। इसके अलावा अरहर की फसल में उकठा रोग, फाइटोपथोरा, अंगमारी एवं पादप बांझ रोग की रोकथाम के लिए 2.5 मि.ली. डाइकोफॉल दवा 1.0 लीटर पानी में घोलकर एवं 1.7 मि.ली. डाइमेथोएट दवा 1 लीटर पानी में घोलकर पौधों पर छिड़काव करें। जिस खेत में उकठा रोग का प्रकोप अधिक हो उस खेत में 3 से 4 वर्ष तक अरहर की फसल नहीं लेनी चाहिए।

अरहर

- अरहर के साथ ज्वार की सहफसल लेने से काफी हद तक उकठा रोग का प्रकोप कम हो जाता है। ट्राइकोडर्मा 4 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज को उपचारित करना चाहिए। इन फसलों में फलीछेदक

कीट का प्रकोप भी इसी महीने आता है। इसके लिए जब 70 प्रतिशत फलियां पक जाएं तो मोनोक्रोटोफॉस 36 एसएल को 300 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर 15 दिनों बाद फिर छिड़काव कर सकते हैं।

सोयाबीन

- **खरपतवार नियंत्रण:** सोयाबीन की फसल में खरपतवार को रासायनिक विधि से नष्ट करने के लिये इमाजेथापायर (10 ईसी) 750-1000 मि.ली. मात्रा प्रति हैक्टर को 500-600 लीटर पानी में मिलाकर बुआई के 10-20 दिनों बाद छिड़काव करें या क्विजालोफॉस-9-टरफ्लूराइल (4.4 ईसी) 750-1000 मि.ली. या फिनॉक्साप्रोन (10 ईसी) 800-1000 मि.ली. मात्रा प्रति हैक्टर को 500-600 लीटर पानी में मिलाकर बुआई के 20-25 दिनों बाद छिड़काव करें। इसके अलावा बुआई के 20-25 दिनों के अन्दर कसोले से निराई-गुड़ाई कर खरपतवारों को नष्ट कर देना चाहिए।
- **पौध संरक्षण:** पीला मोजैक रोग का सोयाबीन की फसल में विशेष प्रभाव पड़ता है। यह वायरस द्वारा फैलता है, जिसे सफेद मक्खी फैलाती है। प्रभावित पौधों की पत्तियां पीली और चित्तीदार दिखाई देती हैं। इसकी रोकथाम के लिए डाइमेथोएट (30 ईसी) या मिथाइल-ओ-डेमेटोन (25 ईसी) की एक लीटर मात्रा को 800-1000 लीटर पानी में घोलकर आवश्यकतानुसार 10-15 दिनों के अन्तराल पर 1-2 छिड़काव करें। रोगरोधी प्रजातियां जैसे पीके-262, पीके-327, पीके-416, पीके-472, पीके-1024 पीएस-564 को बोयें। चितकबरा पीला धब्बा रोग के लिए कन्फीडोर की 250 मि.ली./हैक्टर 25 एवं 45 दिनों पर तथा पत्ती धब्बा रोग के लिए बाविस्टीन की 250 ग्राम दवा 600 लीटर पानी/हैक्टर की दर से छिड़काव करें। खेत में दीमक का प्रकोप दिखाई देने पर मोनोक्रोटोफॉस (36 ई.सी.) 750 मि.ली. या क्लोरोपायरीफॉस (20 ई.सी.) 2.5 लीटर या क्विनालफॉस (25 ई.सी.) 1.5 लीटर दवा को 600-800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

सोयाबीन

मूंगफली

- **जल प्रबंधन:** मूंगफली की फसल में बुआई के 35-40 दिनों तक पुष्प से पेगिंग बनते हैं और इस समय पर पानी की कमी होने पर मूंगफली की उत्पादकता काफी कम हो जाती है। अत: यदि वर्षा नहीं होती है तो सिंचाई की व्यवस्था करनी चाहिए।
- **पोषक तत्व प्रबंधन:** इस समय सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे बोरॉन की कमी दिखने पर 0.2 प्रतिशत बोरेक्स के घोल का प्रयोग करें। इसी प्रकार जिंक की कमी होने पर 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट और 0.25 प्रतिशत चूने का प्रयोग करना चाहिए। मूंगफली की फसल बोने के 40 दिनों बाद इंडोल एसिटिक एसिड 0.7 ग्राम को एल्कोहल (7 मि.ली.) में घोलें तथा 100 लीटर पानी में मिलाकर फसल पर छिड़काव करें। इसके एक सप्ताह बाद 6 मि.ली. एथरेल (40 प्रतिशत) 100 लीटर पानी में घोलकर छिड़कने से मूंगफली की पैदावार 17-27 प्रतिशत तक बढ़ जाती है।

मूंगफली

- **पौध संरक्षण:** कॉलर रॉट से फसल को बचाने के लिए फफूंदनाशक कार्बेण्डाजिम या मैंकोजेब का प्रयोग करना चाहिए। मूंगफली के टिक्का रोग की रोकथाम के लिए खड़ी फसल पर जिंक मैंग्नीज कार्बामेट 2.0 कि.ग्रा. या जिनेब 75 प्रतिशत की 2.5 कि.ग्रा. दवा प्रति हैक्टर की दर से 1000 लीटर पानी में घोलकर 10 दिनों के अन्तराल पर 2-3 छिड़काव करें।

गन्ना

- **जल प्रबंधन एवं गन्ने को सहारा देना:** वर्षा न होने की स्थिति में 15 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करें। हल्की मिट्टी वाले क्षेत्र में फसल को गिरने से बचाने तथा देर से फूटने एवं कल्लों को निकलने से रोकने के लिए वर्षा प्रारंभ होते ही पौधे की जड़ों पर अच्छी तरह मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। अगस्त में गन्ने को बांधें, ताकि फसल गिरने से बचे। फसल गिरने

सूरजमुखी

- **थिनिंग एवं पोषक तत्व प्रबंधन:** सूरजमुखी की फसल में बुआई के 15-20 दिनों बाद अवांछित पौधे निकालकर पंक्तियों में पौधे से पौधे की दूरी 20 सें.मी. करें। बुआई के 25 दिनों बाद 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से टॉप ड्रेसिंग करें।

- **खरपतवार नियंत्रण:** बुआई के 20-25 दिनों बाद पहली सिंचाई के बाद निराई-गुड़ाई करना अति आवश्यक है तथा बुआई के 40-45 दिनों बाद दूसरी निराई-गुड़ाई के साथ पौधों पर 15-20 सें.मी. मिट्टी चढ़ा दें। खरपतवार नियंत्रण हेतु पेण्डीमेथिलीन 30 ई.सी. की 3 लीटर मात्रा 600 से 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से बुआई के 2-3 दिनों के अन्दर छिड़काव करने से खरपतवारों का जमाव नहीं होता है।
- **जल प्रबंधन:** पहली सिंचाई बुआई के 20 से 25 दिनों बाद हल्की या स्प्रिंक्लर से करनी चाहिए। इसके बाद में आवश्यकतानुसार 10 से 15 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए। कुल 5-6 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है और फूल निकलते समय तथा दाना भरते समय बहुत ही हल्की सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है।

से उपज तथा गन्ने में शक्कर की मात्रा दोनों कम हो जाती है।

- **खरपतवार नियंत्रण:** अगस्त में गन्ने की फसल में आने वाले खरपतवार जैसे आइपोमिया प्रजाति (बेल) की बढ़वार होती है, जिसे खेत से उखाड़कर फैंक दें अथवा मेट सल्फ्यूरॉन मिथाइल 4 ग्राम प्रति हैक्टर की दर से 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर, जब इसमें छोटे पौधे खेत में दिखाई पड़े, प्रयोग करना चहिये।
- **पौध संरक्षण:** अगस्त में पौध संरक्षण पर पूरा ध्यान दें। इस माह काफी कीट एवं रोग लगने का भय रहता है।
- **पायरिला कीट:** इस कीट का प्रकोप जुलाई से सितम्बर तक रहता है। इसके शिशु तथा वयस्क गन्ने की पत्ती से रस चूसकर क्षति पहुंचाते हैं। इस कीट के नियंत्रण के लिए अण्ड समूहों को निकालकर नष्ट कर देना चाहिए। फसल वातावरण में पायरिला कीट के परजीवी *एपीरिकेनिया मेलोनोल्यूका* को संरक्षण प्रदान करना चाहिए।
- परजीवी कीट की पर्याप्त उपस्थिति में कीट की स्वत: रोकथाम हो जाती है। रासायनिक नियंत्रण हेतु क्विनालफॉस 25 ई.सी. 2.0 लीटर अथवा डाइक्लोरोवास 76 ई.सी. 375 मि.ली. अथवा क्लोरोपायरीफॉस 20 प्रतिशत ई.सी. 1.5 लीटर प्रति हैक्टर 600-800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।
- **गुरदासपुर बेधक:** कीट का प्रकोप जुलाई से अक्टूबर तक रहता है। सुंडी गन्ने के ऊपर से दूसरी या तीसरी पोरी में प्रवेश कर अन्दर से गन्ने को खोखला कर देती है। इस कीट की रोकथाम के लिए गन्ने की सूखी पत्तियों को काटकर अलग कर देना चाहिए। ट्राइकोग्रामा किलोनिस के 10 कार्ड/हैक्टर की दर से 15 दिनों के अन्तराल पर सायंकाल प्रयोग करना चाहिए। अधिक प्रभावी नियंत्रण हेतु जल निकास की व्यवस्था करें तथा मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. 2.0 लीटर प्रति हैक्टर या क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 1-1.5 लीटर प्रति हैक्टर 600-800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। कार्बोफ्यूरॉन 3 प्रतिशत सी.जी. 30 कि.ग्रा. या फोरेट 10 प्रतिशत सी.जी. 30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

गन्ना

- **जड़बेधक (रूट बोरर) कीट:** इस कीट की सुंडी का प्रकोप छोटे-बड़े दोनों ही पौधों पर पाया जाता है। सुंडी जमीन से लगे हुए गन्ने के भाग में छिद्र बनाकर घुस जाती है तथा डेड हार्ट बनाती है। इन मृतसारों से कोई दुर्गन्ध नहीं निकलती है। इसके साथ ही इसे आसानी से निकाला नहीं जा सकता है। इस कीट की रोकथाम के लिए कीट के अण्ड समूहों को इकट्ठा करके तथा प्रभावित तनों को जमीन से काटकर नष्ट कर देना चाहिए।
- तलहटी वाले खेतों में पेड़ी की फसल नहीं लेनी चाहिए तथा इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 350 मि.ली. अथवा क्लोरोपायरीफॉस 20 प्रतिशत ई.सी. 1.5 लीटर प्रति हैक्टर अथवा फेनवलरेट 0.4 प्रतिशत धूल का 25 कि.ग्रा. की दर से 500-600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।
- **पत्ती का लाल धारी रोग:** इसका प्रकोप जून से सितम्बर से फसल के अन्त तक रहता है। गन्ने की पत्तियों पर लाल रंग की धारियां निचली सतह पर पड़ जाती हैं। इसके अत्यधिक प्रकोप की दशा में पूरी पत्ती लाल हो जाती है। पत्तियों का क्लोरोफिल समाप्त हो जाता है तथा बढ़वार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- गन्ने को बीच से चीरने पर गूदा मटमैला लाल दिखाई पड़ता है, जिसमें से सिरके जैसी गंध आती है। गन्ने की पिथ में सफेद अथवा भूरे रंग की फफूंदी भी विकसित हो जाती है। इसकी रोकथाम के लिए रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का ही प्रयोग करना चाहिए। यदि किसी गन्ने के कटे हुए सिरे अथवा गांठों पर लालिमा दिखे, तो ऐसे सेट का प्रयोग नहीं करना चाहिए। बीज आर्द्र गर्म वायु उपचार (54 डिग्री सेल्सियस ताप पर 2.5 घण्टों तक 99 प्रतिशत आर्द्रता पर) विधि से पूर्व उपचारित किया गया हो। पौधशालाओं के लिए खेत के चयन में समुचित जल निकास की व्यवस्था सुनिश्चित कर लेनी चाहिए, ताकि वर्षा ऋतु में पानी का जमाव न हो सके। ट्राइकोडर्मा 2.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से 75 कि.ग्रा. गोबर की खाद में मिलाकर प्रयोग करना चाहिए। स्यूडोमोनास फ्लोरिसेन्स 2.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से 100 कि.ग्रा. गोबर की खाद में मिलाकर प्रयोग करना चाहिए।

सब्जी फसलें

- **फूलगोभी:** अगस्त में फूलगोभी की मध्यम अगेती किस्में जैसे-पूसा संकर-2, पूसा मेघना, पूसा शरद एवं मध्यम पछेती फूल गोभी की किस्में जैसे-पूसा पौषजा, पूसा शक्ति प्रजातियों की बुआई के लिए बीज की मात्रा 350-400 ग्राम/

पुष्प एवं सगंधीय पौधे

- फूलों के खेतों में वर्षा का पानी निकालने का इंतजाम करें। बागों में आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई कर खरपतवारों को समय पर निकालते रहें।
- गुलाब के नर्सरी स्टॉक की क्यारियों में बदलाई करें। फसल में जल निकास की व्यवस्था करें तथा आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई एवं रेड स्केल कीट का नियंत्रण करें।
- रजनीगंधा, ग्लैडियोलस में आवश्यकतानुसार सिंचाई, निराई-गुड़ाई तथा पोषक तत्वों के मिश्रण का छिड़काव करें एवं रजनीगंधा के स्पाइक की समय पर कटाई करें।
- ग्रीष्म ऋतु के फूलों का समय पूरा हो गया है। इन्हें धीरे-धीरे निकाल दें तथा क्यारियों की खुदाई कर दें। मिट्टी को रोगरहित बनाने के लिए दवाइयां डालें। सर्दियों के फूलों की बीजाई की तैयारी शुरू कर दें।

गुलाब

रजनीगंधा

फूलगोभी

हैक्टर एवं बुआई का समय जुलाई अंत से अगस्त प्रारंभ एवं अगस्त अंत से सितम्बर प्रारंभ नर्सरी तैयार करें।

बागवानी फसलें

- **लीची:** इस फसल में छिलका खाने वाले पिल्लू (बार्क इटिंग कैटरपिलर) की रोकथाम के लिए जीवित छिद्रों में पेट्रोल या नुवान या फार्मेलीन से भीगी रुई ठूंसकर चिकनी मिट्टी से बंद कीजिए। इन कीटों से बचाव के लिए बगीचे को साफ रखना श्रेयस्कर पाया गया है। आम एवं लीची में रेडरस्ट और सूटी मोल्ड की रोकथाम के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड की 30 ग्राम प्रति लीटर या ब्लाइटॉक्स 0.3 प्रतिशत (3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर) का छिड़काव वृक्षों पर करें। लीची की फसल में लीफ माइनर की रोकथाम के लिए मेटासिस्टॉक्स 2.0 मि.ली. प्रति लीटर का प्रयोग करें।
- **अमरूद:** पौधों का रोपण इस माह में 5×5 मीटर की दूरी पर करना चाहिए। पौध लगाते समय प्रति गड्ढा 25-30 कि.ग्रा. गोबर की खाद डालनी चाहिए। इसके लिए प्रथम वर्ष में 260 ग्राम यूरिया, 375 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट और 500 ग्राम पोटेशियम सल्फेट प्रति पौधा डालना चाहिए। इसके बाद आयु की दर से उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।
- अमरूद की वर्षा के समय की फसल से पैदावार तो अधिक मिलती है, किन्तु गुणवत्ता खराब होती है। इसलिए इस मौसम में फल न लेकर शरद ऋतु में लेने के लिए आवश्यक कृषि कार्य करने चाहिए।
- अमरूद के पौधों में जस्ता तत्व की कमी होने से पत्तियों का पीला पड़ना, छोटा होना तथा पौधों की बढ़वार कम हो जाने के लक्षण मिलते हैं। इसके नियंत्रण के लिए 2 प्रतिशत जिंक सल्फेट का छिड़काव अथवा 300 ग्राम जिंक सल्फेट का पौधों की जड़ों में देना लाभप्रद पाया गया है। मानसून के समय बागानों में जल निकास का उचित प्रबंधन होना चाहिए। इसके साथ ही बागों में लगातार निगरानी रखें और रोग आदि के लक्षण दिखने पर शीघ्र उपचार करें।
- **कटहल:** पौधे में तनाबेधक कीट के नियंत्रण हेतु छिद्र को किसी पतले तार से साफ करके नुवाक्रॉन का घोल (10 मि.ली./लीटर) अथवा पेट्रोल या केरोसिन तेल की चार-पांच बूंद रुई में डालकर गीली चिकनी मिट्टी से बंद कर दें। इस प्रकार वाष्पीकृत गंध के प्रभाव से पिल्लू मर जाते हैं एवं तने में बने छिद्र धीरे-धीरे भर जाते हैं।
- **पपीता:** पौधों पर फूल आने के समय 2 मि.ली. सूक्ष्म तत्वों को एक लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। पनामा विल्ट की रोकथाम के लिए बाविस्टीन के 1.5 मि.ग्रा. प्रति लीटर पानी के घोल से पौधों के चारों तरफ की मिट्टी पर 20 दिनों के अंतराल से दो बार छिड़काव कर देना चाहिए। कॉलर रॉट के प्रकोप से पौधे जमीन की सतह से ठीक ऊपर गलकर गिर जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए पौधशाला से पौधों को रिडोमिल (2 ग्राम/ली.) दवा का छिड़काव करें। खेत में जलभराव न होने दें और जरूरत पड़ने पर खड़ी फसल में भी रिडोमिल (2 ग्राम/लीटर) के घोल से जल सिंचन करें।
- **केला:** इसमें प्रति पौधा 100 ग्राम पोटाश एवं 55 ग्राम यूरिया पौधे से 50 सें.मी. दूर गोलाई में प्रयोग कर हल्की गुड़ाई कर भूमि में अच्छी तरह मिला दें। पौधों में पनामा विल्ट की रोकथाम के लिए बाविस्टीन के 1.5 मि.ग्रा. प्रति लीटर पानी के घोल से पौधों के चारों तरफ की मिट्टी पर 20 दिनों के अंतराल से दो बार छिड़काव कर देना चाहिए।
- **नीबू:** इसमें सिट्रस कैंकर रोग के लगने की आशंका रहती है। रोग के लक्षण पत्तियों से प्रारंभ होकर बाद में टहनियों, कांटों और फलों पर आ जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए गिरी हुई पत्तियों को इकट्ठा कर नष्ट कर दें तथा रोगयुक्त टहनियों की काट-छांट कर बोर्डो मिश्रण (5:5:50) का छिड़काव करें। ब्लाइटॉक्स 0.3 प्रतिशत (3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर) का छिड़काव वृक्ष पर करें।

आम

बागों से फलों की तुड़ाई के बाद वृक्षों की रोगग्रस्त और अवांछित शाखाओं की कटाई-छंटाई कर जला दें। नये वृक्षों में 500 ग्राम नाइट्रोजन प्रति वृक्ष की दर से प्रयोग करें। आम में शल्क कीट तथा शाखा गांठ कीट की रोकथाम के लिए मिथाइल पैराथियॉन 1.0 मि.ली. या डाइमेथोएट 1.5 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी में से किसी एक दवा का 15 दिनों के अन्तराल पर बदलकर दो बार छिड़काव करें। तराई क्षेत्रों में आम के पौधों पर गांठ बनाने वाले कीट गॉल मेकर की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस 0.5 प्रतिशत या डाइमेथोएट 0.06 प्रतिशत दवा का छिड़काव करें। आम के पौधों पर लाल रतुआ एवं श्याम व्रण (एंथ्रेक्नोज) के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) दवा का छिड़काव करें। आम सिल्ली कीट की रोकथाम के लिए 5-10 अगस्त के बीच क्विनालफॉस (0.04 प्रतिशत) का 10-15 दिनों के अंतराल पर 3 छिड़काव करें। कीट प्रभावित टहनियों के नुकीली गांठों की छंटाई करें।

- नीबूवर्गीय फलों में रस चूसने वाले कीट आने पर मैलाथियॉन 2 मि.ली./ लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। नीबू के पौधे में नीली फफूंद रोग को प्रतिबंधित करने के लिए फलों को बोरेक्स या नमक से उपचारित करके रोका जा सकता है। फलों को कार्बेण्डाजिम या थायोफनेट मिथाइल 0.1 प्रतिशत से उपचारित करके भी रोग नियंत्रित किया जा सकता है।
- **बेर:** इस फसल में मिलीबग कीट की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस (36 ई.सी.) 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- नीबू, बेर, केला, जामुन, पपीता, आम, अमरूद, कटहल, लीची, आंवला के नये बाग लगाने का काम इस महीने पूरा कर लें और अपने क्षेत्र को ध्यान में रखकर ही अच्छी किस्मों के पौधे लगायें। यह माह नीबू और लीची में गूटी बांधने का उपयुक्त समय होता है। ■

कृषि खबरें, देश-विदेश की

समुद्र के पानी में बढ़ता खारापन

समुद्र के पानी का बढ़ता खारापन वैज्ञानिकों के लिए गंभीर चिंता का विषय बनता जा रहा है। हाल ही में एक अध्ययन में यह बात सामने आई है कि समुद्री जल में लवण (नमक) की मात्रा लगातार बढ़ रही है। विशेषज्ञों के अनुसार इसका मुख्य कारण आर्कटिक क्षेत्र में बर्फ का तेजी से पिघलना है। आर्कटिक क्षेत्र में समुद्री पानी का अधिक खारा होना एक असामान्य चेतावनी संकेत है। पानी का बढ़ता खारापन समुद्री जैवविविधता, जलवायु परिवर्तन और मानव जीवन की आवश्यकताओं पर सीधा असर डालता है। यह अध्ययन प्रतिष्ठित शोध पत्रिका प्रोसीडिंग्स ऑफ द नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज (PNAS) में प्रकाशित हुआ है। इसमें यूरोप के कई देशों के वैज्ञानिकों ने भाग लिया। यूरोपीय स्पेस एजेंसी (ESA) के उपग्रहों ने वर्ष 2011 से 2023 तक समुद्री जल में नमक की मात्रा को रिकॉर्ड किया। जब वैज्ञानिकों ने इन आंकड़ों का विश्लेषण किया, तो उन्हें समुद्र की सतह का खारापन और आर्कटिक बर्फ के पिघलने के बीच सीधा संबंध मिला। उपग्रह चित्रों से यह भी ज्ञात हुआ कि आर्कटिक महासागर के चारों ओर का जल अधिक खारा हो गया है। बढ़ते समुद्री खारापन के नुकसान अधिक गंभीर हैं। अत्यधिक खारापन समुद्री जीवों की प्रजनन क्षमता और विकास को प्रभावित करता है। यह जलवायु चक्र में असंतुलन ला सकता है। तटीय क्षेत्रों में खारा पानी भूमि जल को प्रदूषित कर पेयजल संकट उत्पन्न करता है। इसके साथ ही, कृषि में खारे पानी का उपयोग मिट्टी की उर्वराशक्ति घटाकर फसल उत्पादन को प्रभावित कर सकता है।

जलवायु परिवर्तन से दुग्ध उत्पादन पर प्रभाव

तेज गर्मी और बढ़ती नमी के कारण गायों और अन्य दुग्ध देने वाले पशुओं में तनाव (हीट स्ट्रेस) बढ़ रहा है, जिससे दूध उत्पादन में भारी कमी देखी जा रही है। साइंस एडवांसेज पत्रिका में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार, यह समस्या भारत, पाकिस्तान जैसे देशों में और अधिक गंभीर हो सकती है, जहां तापमान और आर्द्रता दोनों ही अत्यधिक होते हैं।

इजरायल की तेल अवीव यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने पाया कि सिर्फ एक दिन की तीव्र गर्मी भी दूध उत्पादन में लगभग 10 प्रतिशत तक की कमी ला सकती है। यदि यह स्थिति लगातार बनी रहती है, तो इसका असर 10 दिनों से अधिक समय तक रह सकता है। यह अध्ययन इजरायल के डेरी फार्मों में 12 वर्षों तक चला और इसमें 1.3 लाख गायों तथा 300 से अधिक किसानों को शामिल किया गया।

कूलिंग तकनीक भी नहीं रोक पाई असर

अध्ययन में यह भी सामने आया कि पंखों, पानी के छिड़काव और अन्य कूलिंग उपायों के बावजूद जब तापमान 26 डिग्री सेल्सियस से ऊपर चला जाता है और नमी बढ़ जाती है, तो ये उपाय केवल 40 प्रतिशत तक ही कारगर साबित होते हैं। इस स्थिति में पशु 'स्टीम बाथ' जैसी प्रतिक्रिया में चले जाते हैं और तनाव के कारण दूध देना कम कर देते हैं।

भारत में भी प्रभाव

भारत, पाकिस्तान और ब्राजील जैसे देशों में हीट स्ट्रेस के कारण प्रतिदिन प्रति पशु दूध उत्पादन में 3.5 प्रतिशत से 4 प्रतिशत तक की कमी देखी जा सकती है। हालांकि, पंखों और अन्य कूलिंग सिस्टम में निवेश करके भारत में 1.5 प्रतिशत से 2.7 प्रतिशत तक सुधार की संभावना जताई गई है। लेकिन इसके लिए बड़े स्तर पर संसाधन और योजनाबद्ध प्रयासों की जरूरत होगी।

हरित ऊर्जा से रोशन हो रहा भारत

भारत ने स्वच्छ ऊर्जा के क्षेत्र में एक ऐतिहासिक उपलब्धि हासिल की है। देश अब अपनी कुल विद्युत उत्पादन क्षमता का 50 प्रतिशत हिस्सा गैर-जीवाश्म यानी स्वच्छ ऊर्जा स्रोतों से प्राप्त कर रहा है। यह लक्ष्य वर्ष 2030 तक हासिल किया जाना था, लेकिन इसे पांच वर्ष पहले ही पूरा कर लिया गया है।

ऊर्जा मंत्रालय के नवीनतम आंकड़ों के अनुसार, भारत की कुल बिजली उत्पादन क्षमता 484.8 गीगावॉट है, जिसमें से 242.8 गीगावॉट बिजली सौर, पवन, जलविद्युत,भूतापीय ऊर्जा और बायोमास जैसे गैर-जीवाश्म स्रोतों से प्राप्त हो रही है। विशेषज्ञों का कहना है कि यह उपलब्धि देश में नवीकरणीय ऊर्जा की तेजी से बढ़ती क्षमता का परिणाम है।

पिछले एक दशक में भारत में पीएम सूर्य गृह और पीएम कुसुम जैसी योजनाओं के प्रभाव के कारण ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में सौर ऊर्जा की पहुंच बढ़ी है। कई योजनाओं के माध्यम से घरेलू और व्यावसायिक स्तर पर सौर ऊर्जा को बढ़ावा दिया गया है। इसके चलते भारत वैश्विक स्तर पर नवीकरणीय ऊर्जा उत्पादन में चौथे और सौर ऊर्जा क्षमता में तीसरे स्थान पर पहुंच गया है।

ऊर्जा क्षेत्र के जानकारों के अनुसार, यह बदलाव भारत को न केवल ऊर्जा आत्मनिर्भरता की ओर ले जा रहा है, बल्कि जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में भी मदद कर रहा है। विद्युत उत्पादन में स्वच्छ ऊर्जा की बढ़ती हिस्सेदारी पर्यावरणीय प्रदूषण को कम करने और सतत विकास के लक्ष्यों को पूरा करने में सहायक सिद्ध हो रही है।

प्रस्तुतिः गजेंद्र

पंजीकरण संख्या 14252/57 पंजीयक, समाचार पत्र, भारत सरकार
दिल्ली पोस्टल पंजीकृत संख्या DL(C)-12/1145/10-12
ISSN 0023-1088
मूल्य: ₹30

डा. अनुराधा अग्रवाल, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली-110092 से लेजरटाईपसैट एवं मुद्रित। सम्पादक: सुनीता अरोड़ा